ISSN 2455-6181
वर्ष : 14, अंक : 7 जुलाई 2016 ₹ 10

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

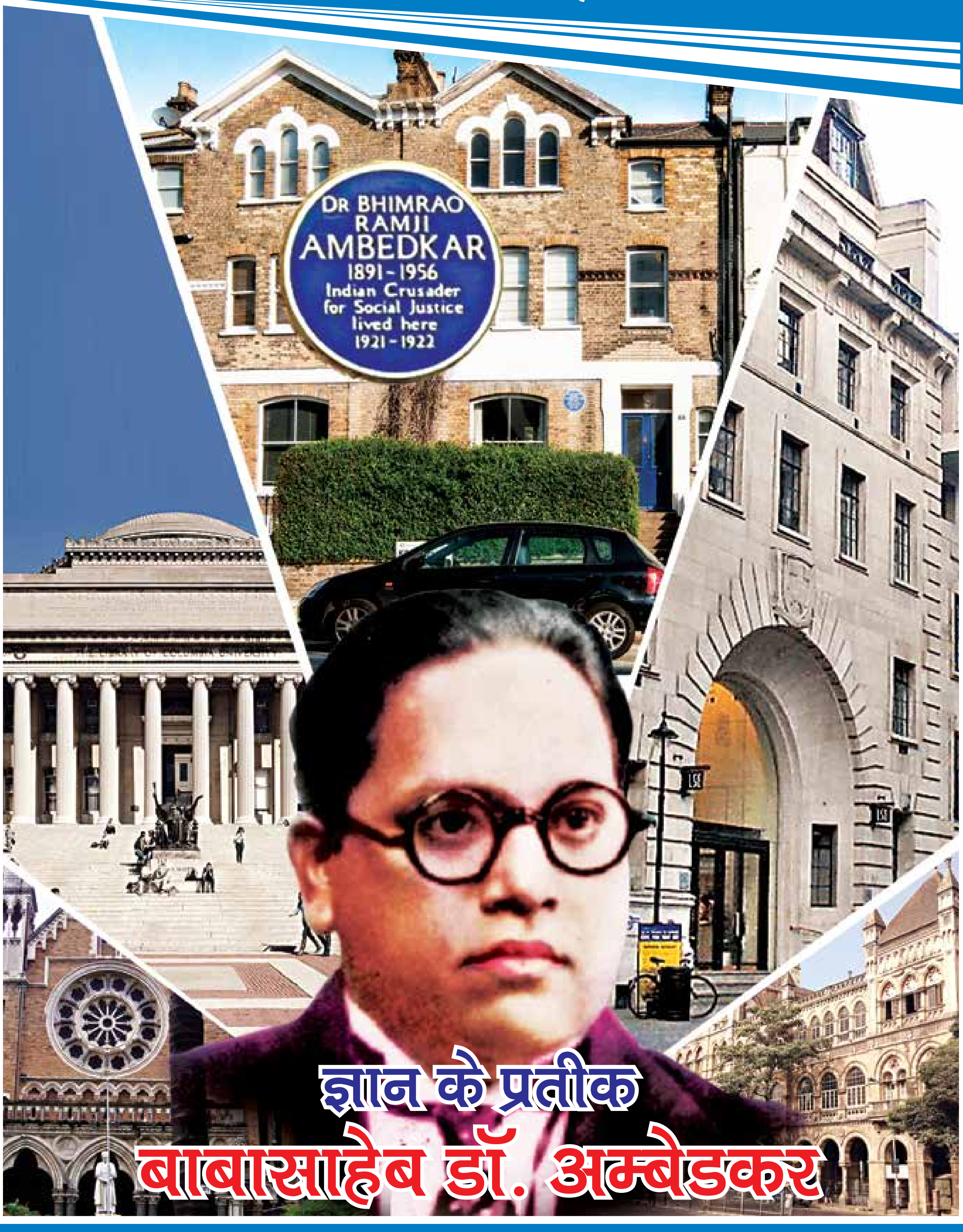

ज्ञान के प्रतीक
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर

भारत का संविधान

हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

वर्ष : 14 ★ अंक : 7 ★ जुलाई 2016 ★ कुल पृष्ठ : 60

सम्पादक
सुधीर हिलसायन

सम्पादक मंडल
प्रो. राजकुमार फलवरिया
प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
डॉ. प्रभु चौधरी

सम्पादकीय कार्यालय
सामाजिक न्याय संदेश
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
15 जनपथ, नई दिल्ली-110001
सम्पादकीय सम्पर्क : 011-23320589
फैक्स : 011-23320582
ई.मेल : hilsayans@gmail.com
editorsnsp@gmail.com
वेबसाईट: www.ambedkarfoundation.nic.in

(सामाजिक न्याय संदेश उपर्युक्त वेबसाईट पर उपलब्ध है)

साज-सज्जा एवं डिजाइन : राजन कुमार

कार्यालय व्यवस्था
मनोज कुमार
सब्सक्रिप्शन सम्पर्क : 011-23320588

प्रकाशक व मुद्रक **जी.के. द्विवेदी**, निदेशक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार) के लिए इंडिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110064 से मुद्रित तथा 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित व **सुधीर हिलसायन**, सम्पादक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा सम्पादित।

सामाजिक न्याय संदेश में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित लेखों /रचनाओं में दिए गए तथ्य संबंधी विवादों का पूर्ण दायित्व लेखकों /रचनाकारों का है। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषय-वस्तु के लिए भी सामाजिक न्याय संदेश उत्तरदायी नहीं है। समस्त कानूनी मामलों का निपटारा केवल दिल्ली/नई दिल्ली के क्षेत्र एवं न्यायालयों के अधीन होगा।

RNI No. : DELHIN/2002/9036

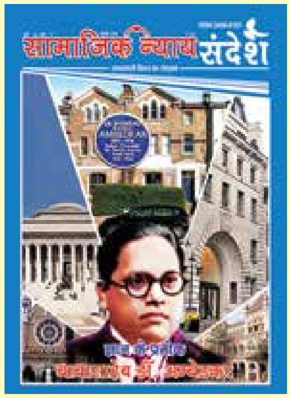

इस अंक में

❖ सम्पादकीय/ज्ञान के प्रतीक बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर	सुधीर हिलसायन	2
❖ विमर्श/डॉ. भीमराव अम्बेडकर और शिक्षा की प्रथा	कन्हैयालाल चंचरीक	4
❖ विश्लेषण/डॉ. भीमराव अम्बेडकर : ध्येयनिष्ठ विराट व्यक्तित्व	प्रो. राजकुमार फलवरिया	11
❖ शोध लेख/डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्थापित राजनीतिक प्रवेश प्रशिक्षण विद्यालय	शिवशंकर दास	14
❖ विमर्श/शिक्षा, संगठन और संघर्ष के संगम : डॉ. भीमराव अम्बेडकर	सुनील कुमार	17
❖ विश्लेषण/शिक्षा का अधिकार और नवउदारवादी हमला	अरविंद	19
❖ विचार/सार्वभौमिक जीवन मूल्यों में शिक्षा की अनिवार्यता	डॉ. प्रभु चौधरी	27
❖ पुस्तक अंश/बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर-जीवन चरित	धनंजय कीर	30
❖ चौथा खंभा/डॉ. भीमराव अम्बेडकर और मीडिया	बी.पी. महेश चंद्र गुरु	38
❖ मन की बात/प्रधानमंत्री द्वारा उद्बोधन		41
❖ पुस्तक अंश/कांग्रेस एवं गांधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया?	डॉ. बी.आर. अम्बेडकर	47

ग्राहक सदस्यता शुल्क : वार्षिक ₹ 100, द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक : ₹ 250

*डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर **डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन**, 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 के नाम भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।*

ज्ञान के प्रतीक बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर

"अपने पिता के एक मित्र को लिखे गए पत्र में डॉ. अम्बेडकर ने लिखा है- 'हमारी प्रगति में तीव्र गति से वृद्धि हो सकती है यदि हम लड़कों के साथ-साथ लड़कियों को भी शिक्षा दें।' अमेरिका में ही उनमें स्वाभिमान, अपनी सहायता स्वयं करने और असहायता के विरुद्ध विद्रोह का बीजारोपण हुआ। उन्हें अपने दायित्वों का ध्यान था। उन्होंने अपने-आपको विद्याध्ययन में संपूर्ण रूप से झोंक दिया था। वे शहर की चमक-दमक और चहलपहल से दूर रहे।"

जुलाई 1913 के तीसरे सप्ताह में डॉ. अम्बेडकर न्यूयार्क पहुंचे। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में नामांकन करवाया। प्रारंभ के कुछ महीनों तो उन्हें अपना निवास बदलते रहना पड़ा। वहां का भोजन उन्हें पसंद नहीं आ रहा था, कहीं का भोजन अधपका होता था तो कहीं भोजन के साथ कुछ ऐसी चीजें परोसी जाती थी जो उन्हे कतई पसंद नहीं थी। आखिर में लिविंगस्टोन हॉल में बम्बई के एक पारसी विद्यार्थी नवल भथेना के साथ रहने लगे। दोनों के बीच प्रगाढ़ मित्रता जीवनपर्यंत बनी रही। कोलम्बिया विश्वविद्यालय का छात्र जीवन उनके लिए दिव्य प्रकाश देने वाला था। वहां वे विद्यार्थियों के साथ स्वतंत्रतापूर्वक घूम सकते थे, भारत की तरह वहां सामाजिक प्रतिबंध नहीं था और उनकी गतिविधियों पर अछूतपन का कोई अभिशाप नहीं था। वहां सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाता था। उनके लिए यह सब कुछ एक नए संसार की भांति था। इसने उनके मानसिक क्षितिज को विस्तृत कर दिया। उनकी बुद्धि और गहन दृष्टि को विकास के लिए एक उचित वातावरण मिला। अपने पिता के एक मित्र को लिखे गए पत्र में अम्बेडकर ने लिखा है- ''हमारी प्रगति में तीव्र गति से वृद्धि हो सकती है यदि हम लड़कों के साथ-साथ लड़कियों को भी शिक्षा दें।'' अमेरिका में ही उनमें स्वाभिमान, स्वावलंबन और असहायता के विरुद्ध विद्रोह का बीजारोपण हुआ। उन्हें अपने दायित्वों का ध्यान था। उन्होंने अपने-आपको विद्याध्ययन में संपूर्ण रूप से झोंक दिया था। वे शहर की चमक-दमक और चहलपहल से दूर रहे। विश्वविद्यालयीन जीवन के आमोद-प्रमोद या मनोरंजक गतिविधियों से वे दूरी बनाए रहे। उन्हें अच्छी भूख लगती थी परंतु वे उसे कॉफी के एक कप, दो चपाती और मांस-मछलियों के कुछ रोस्टेड टुकड़े से ही शांत कर लेते थे। भूख पिपासा और ज्ञान पिपासा में उनकी प्राथमिकता ज्ञान पिपासा को तृप्त करने में रही।

उन्हें अपनी छात्रवृत्ति का एक हिस्सा अपने परिवार हेतु घर भी भेजना पड़ता था, इसलिए वे अपने व्यय को

कम से कम रखते थे। उनके अध्ययन का प्रमुख विषय अर्थशास्त्र रहा है, इसके अलावा समाजशास्त्र, राजनीतिविज्ञान, नैतिक दर्शन और मानव विज्ञान में भी उनकी गहरी रूचि थी। उन्होंने एक दिन में 18 घण्टे तक अध्ययन किया। उन्होंने मास्टर ऑफ आर्ट्स की उपाधि हेतु 'एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड फाइनेंस ऑफ दि ईस्ट इण्डिया कंपनी' विषय पर थीसिस लिखी। 1915 में उन्हें एम.ए. की उपाधि प्राप्त हुई। उन्होंने 9 मई 1916 को डॉ. गोल्डन वाइजर के एंथ्रोपोलॉजी सेमिनार में एक शोध पत्र पस्तुत किया जिसका शीर्षक था 'कास्ट्स इन इंडिया : देअर मेकेनिज्म, जेनेसिस एंड डेवलपमेंट'।

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पीएच.डी. उपाधि हेतु जून 1916 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय में जो शोध प्रबंध प्रस्तुत किया उसका शीर्षक – 'नेशनल डिविडेंड ऑफ इंडिया – ए हिस्टोरिक एण्ड एनालिटिकल स्टडी' था जिसे कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने स्वीकृत कर लिया। परंतु विधिवत उपाधि देने के लिए यह आवश्यक था कि उस शोध प्रबंध की निश्चित प्रतियां विश्वविद्यालय में प्रस्तुत की जाती। परंतु उनके पास इतना धन नहीं था। आठ वर्ष बाद उनके इस शोध प्रबंध को मैसर्स पी.एस. किंग एण्ड सन्स लि. लंदन ने एक नए शीर्षक ''दी इवाल्यूशन ऑफ प्राविन्शियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया – ए स्टडी इन दि प्राविन्शियल डिसेन्ट्रलाइजेशन ऑफ इम्पीरियल फाइनेन्स'' के साथ प्रकाशित किया। तब अम्बेडकर ने इसकी प्रतियां विश्वविद्यालय को प्रस्तुत की और उन्हें पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त हो सकी। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एडविन, आर.ए. सेलिग्मेन के प्रिय शिष्यों में अम्बेडकर थे। विश्वविद्यालय के कला संकाय के प्रोफेसरों और विद्यार्थियों ने शोध प्रबंध प्रस्तुति के अवसर पर अम्बेडकर के सम्मान में एक प्रीतिभोज का आयोजन भी किया था। न्यूयार्क में अम्बेडकर ने तकरीबन तीन हजार पुरानी पुस्तकें इकट्ठा की थी। यह उनकी पुस्तकों के प्रति कभी न संतुष्ट होने वाली भूख का परिचायक था। ये सभी पुस्तकें भारत नहीं पहुंच सकीं क्योंकि उन्होंने जिस मित्र पर भरोसा किया था वह भरोसेमंद नहीं निकला। जून 1916 में अम्बेडकर ने अमेरिका छोड़ा।

अमेरिका छोड़ने के थोड़े समय बाद अम्बेडकर लंदन पहुंचे और बार-एट-लॉ की पढ़ाई के लिए अक्टूबर 1916 में ''ग्रेज इन'' में और अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए ''लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड पालिटिकल साइन्स'' में प्रवेश लिया।

लंदन में प्रोफेसरों ने डॉ. अम्बेडकर के उन्नत अध्ययन को देखते हुए उन्हें अर्थशास्त्र में डी.एससी. की उपाधि के लिए तैयारी करने की अनुमति दे दी। चूंकि वे एम.ए. पीएच.डी. थे अतः उन्हें एम.एससी. (अर्थशास्त्र) करने की इजाजत भी मिल गई। लंदन में भी डॉ. अम्बेडकर ने अपने आपको अमेरिका की भांति, अध्ययन में व्यस्त रखा। इस बीच उनकी छात्रवृत्ति की अवधि भी समाप्त हो गई। बड़ौदा रियासत के दीवान ने उन्हें वापिस भारत आने को कहा। उन्होंने महाराजा बड़ौदा को पुनः आवेदन किया कि उनकी छात्रवृत्ति की अवधि थोड़ी और बढ़ा दी जाए, परंतु ऐसा संभव नहीं हो पाया।

डॉ. अम्बेडकर को अपना अध्ययन बीच में ही छोड़कर वापस लौटना पड़ा। परंतु उन्होंने वापस आने का दृढ़ निश्चय किया और प्रोफेसर एडविन केनन ने उनकी सिफारिश कर दी। इस पर लंदन विश्वविद्यालय ने उन्हें यह अनुमति दे दी कि अक्टूबर 1917 से लेकर चार वर्ष की अवधि में वे अपना अध्ययन पुनः प्रारंभ कर सकेंगे।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तिव निर्माण एवं उनके कृतित्व में विदेश में शिक्षा ग्रहण करने का गहरा असर पड़ा। चिंतन/दर्शन के जिस शिखर पर डॉ. अम्बेडकर पहुंचे, उसमें कोलम्बिया विश्वविद्यालय लंदन स्कूल और इकोनॉमिक्स, 'ग्रेज इन' आदि का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उपर्युक्त संस्थानों ने भी डॉ. अम्बेडकर को एक सुयोग्य मेधावी छात्र होने का सम्यक मान्यता प्रदान की है। कोलंबिया विश्वविद्यालय ने उन्हें 'सिम्बल ऑफ नॉलेज' अर्थात् ज्ञान के प्रतीक के तौर पर मान्यता प्रदान की है।

डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने अपने चिंतन/दर्शन में 'शिक्षित बनों, संगठित रहो, संघर्ष करो' को मूलमंत्र माना है।

(सुधीर हिलसायन)

विमर्श

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर और शिक्षा की प्रथा

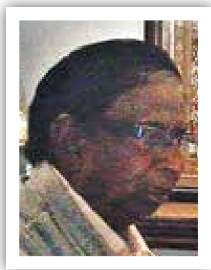

■ कन्हैयालाल चंचरीक

करोड़ों दलितों की शिक्षा, विज्ञान, इंजीनियरिंग, टेक्नोलॉजी, शोध के क्षेत्र में प्रशिक्षण, दक्षता और प्राथमिकता, पंचायत से विधानसभा और संसद तक सत्ता की भागीदारी, रोजगार प्राप्त करने के समान अवसर, प्रतियोगी परीक्षाओं से पूर्व समुचित प्रशिक्षण और मार्गदर्शन, संविधान प्रदत्त आरक्षण आदि ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो अधूरे, अनुत्तरित से दिखते हैं।

विधानसभा-संसद में अगर संरक्षित सीटे हैं तो उनमें चुनकर आने वाले माननीय अस्पृश्य जातियों द्वारा नहीं उच्च वर्ग के लोगों यानी मतदाताओं द्वारा पार्टी आधार पर चुन कर आते हैं। इसीलिए संरक्षित सीटों पर निर्वाचित माननीय दलितों (पूर्व अस्पृश्यों) के सही प्रतिनिधि नहीं माने जा सकते - ऐसा संविधान विशेषज्ञ, शीर्ष दलित विद्वान मानते हैं। इसीलिए पूर्व की अछूत जातियां, अंग्रेजों द्वारा घोषित अपराधशील जातियां, घुमंतू जातियां जस की तस हैं। कुछ बड़े नगरों को छोड़कर आर्थिक समानता कहीं नहीं दिखाई देती। पढ़े-लिखे लोग अपनी योग्यता के बल पर सिविल सर्विसेज में आते हैं। दलित बेरोजगारी चरम पर है। ये मूल प्रश्न वर्तमान सत्ताधारियों की चिंता का विषय बना हुआ है। दूसरे प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा के उदार तत्वों के विषय में भी गंभीर चिंतन-मनन हो रहा है। हमें पहले अम्बेडकर की शिक्षा-प्रयास और दलितों में नवजागरण की लहर का संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के दौरान प्रभुत्व शिक्षा नीतियां किस प्रकार की थी, उनका प्रभाव क्षेत्र क्या था। तभी हम डॉक्टर अम्बेडकर के शिक्षा, नवजागरण के प्रयासों पर प्रकाश डाल सकते हैं।

अंग्रेजों के भारत में आने की कहानी भी विचित्र है। वें 17 वीं शताब्दी के शुरुआत में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में भारत में आए थे। मुगल शासन तब पतनावस्था में था। ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन 1857 तक

लॉर्ड मैकाले की प्रशंसा भी होती है और आलोचना भी। सन् 1835 में लॉर्ड मैकाले ने गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य के नाते लॉर्ड विलियम बेंटिक को जो तत्कालीन कंपनी राज के गवर्नर जनरल थे, एक विशेष संस्करण पत्र प्रस्तुत किया जिसका आशय भारत में अंग्रेजी का प्रचार प्रसार करना था। राज के लिए नौकरशाही पैदा करनी थी, जो अंग्रेजी जानती हो।

कायम रहा। 1858 से 1947 तक भारत सीधे ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन आ गया। इसका बड़ा रोमांचक इतिहास है। उन्होंने ही लोकसेवा की शुरुआत की। सच्चाई यह है कि भारत में लोक शिक्षा का ढांचा भी अंग्रेजों ने खड़ा किया था।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शिक्षा विषयक प्रारंभिक प्रयास

हिंदू भारत में संस्कृत, बौद्ध भारत में पाली, मुस्लिम मुगल काल में अरबी फारसी में बड़ी सीमित और चुने उच्च वर्गों में शिक्षा का प्रचलन था। आधुनिक भारत के निर्माण, शिक्षा और विकास की शुरुआत ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के साथ हो गई थी। अंग्रेजों से पूर्व मुस्लिम प्रभाव और ब्राह्मणवादी प्रवृत्तियों के कारण अरबी और संस्कृत की प्रधानता थी। देशी लोगों ने अपनी भाषा लिपियां निर्मित कर ली थी। जैसे गुरुमुखी, मुंडी (सराफी लिपियां)।

18वीं सदी के प्रारंभ में यूरोपीय धर्म प्रचारक (मिशनरी) ईसाई धर्म-संस्कृति-भाषा का प्रचार-प्रसार जोर-शोर से करने में लगे हुए थे। जिसका प्रारंभ बंबई, मद्रास और बंगाल प्रेसीडेंसियों में देखा जा सकता था।

महाराष्ट्रीयन, द्रविड़ और बंगाली ब्राह्मण शिक्षा के प्रति अवश्य जागरूक थे। सन् 1781 में गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने फारसी और अरबी भाषा के अध्ययन हेतु कलकत्ता में एक मदरसा खोला। सन् 1784 में हेस्टिंग्स के सहयोगी सर विलियम जॉन्स ने (रॉयल) एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की, जिसने अंग्रेजी में भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किए। सन् 1791 में ब्रिटिश रेजिंडेंट डंकन ने बनारस में संस्कृत विद्यालय स्थापित किया।

मिशनरी आदिवासियों और दलित अस्पृश्यों में शिक्षा, आधुनिक रहन-सहन और ईसाइयत का बेरोक-टोक प्रचार करने में लगे रहे। धर्म परिवर्तन मामूली बात थी। यह सब बेरोक-टोक से चलता रहा।

ब्रिटिश भारत में शिक्षा -

वैदिक युग ब्राह्मणी शिक्षा का पोषक था। बौद्धकाल में निम्न जातियों-शूद्रों को अधिकार प्राप्त हुए। शिक्षा उच्च स्तर पर थी। मुस्लिम युग अरबी-फारसी का पोषक था। कंपनी सरकार के गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली ने सन् 1800 में गैर-सैनिक अधिकारियों की शिक्षा हेतु फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। सन् 1802 में यह शिक्षा कॉलेज बंद हो गया। कंपनी ने सर्वप्रथम सन् 1813 के चार्टर एक में भारतीय शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु एक लाख रुपए का प्रावधान किया। यह मामूली धनराशि थी।

दूसरी ओर ईस्ट इंडिया कंपनी लगातार भारत के हर हिस्से को जीतने में प्रवृत्त रही। लगभग 150 वर्ष तक कंपनी शिक्षा के प्रति उदासीन ही बनी रही।

फलतः अस्पृश्य, शूद्र, यायावर (घुमंतू जातियां) शिक्षा पाने में असमर्थ या वंचित बनी रही। अत्याचार, शोषण जारी रहा। बंबई प्रेसीडेंसी के महार ईस्ट इंडिया कंपनी की पैदल पल्टन में भर्ती होने के कारण प्रारंभिक शिक्षा पाने में अवश्य सफल रहे। इसी तरह मद्रास और बंगाल प्रेसीडेंसी के पेरियार और अछूत वर्ग फौज में अवसर पाने के कारण ऐलीमेंटरी शिक्षा, सुधरे रहन-सहन के लाभ के सहभागी बने। दूसरी ओर ईसाई शिक्षा से आदिवासी और अछूत जातियां भी लाभान्वित तो हुई पर उन्हें धर्म परिवर्तन कर ईसाई बनना पड़ा।

लॉर्ड मैकाले एक महान शिक्षाविद्

लॉर्ड मैकाले की प्रशंसा भी होती है और आलोचना भी। सन् 1835 में लॉर्ड मैकाले ने गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य के नाते लॉर्ड विलियम बेंटिक को जो तत्कालीन कंपनी राज के गवर्नर जनरल थे, एक विशेष संस्करण पत्र प्रस्तुत किया जिसका आशय भारत में अंग्रेजी का प्रचार-प्रसार करना था। राज के लिए नौकरशाही पैदा करनी थी। जो अंग्रेजी जानती हो। इसी वर्ष बैंटिक ने मैकाले के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया ऑर्बिट इस भारत में अंग्रेजी शिक्षा की दृढ़ नींव पड़ी। सरकारी नीति के रूप में लॉर्ड ऑकलैंड ने उच्च वर्ग के साथ साथ निम्न वर्गों में भी शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार की नीति को लागू किया। यह सब कार्य वुड डिस्पैच से पूर्व की नीति थी। राजा राममोहन राय ने भी अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन किया था।

इतिहास साक्षी है कि सन 1833 से 1853 तक का समय भारतीय शिक्षा पद्धति का संक्राति काल है। इस दौरान

> इसको ब्रिटिश भारत ने एक महान क्रांतिकारी कदम माना। प्रसिद्ध वुड के प्रस्ताव में 100 के लगभग शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा माध्यम, सुधारों और उसके कार्यान्वयन पर जोर दिया गया। शिक्षा का माध्यम यद्यपि अंग्रेजी रखा गया, लेकिन देशी भाषाओं के विकास और साहित्य रचना पर भी जोर दिया गया।

शिक्षा का मूल उद्देश्य अंग्रेजी-करण था, यूरोपीय मिशनरियों के कार्यों के द्वार खोल दिए गए। अंग्रेजी शासक वर्ग की भाषा बन गई जिसमें ब्राह्मण और उच्च जातियों का प्रधान्य था। अछूत जातियां लाभान्वित नहीं हुई। इसलिए लोग नौकरियों से वंचित रहे।

वुड डिस्पैच (1854) : ईस्ट इंडिया कंपनी के बोर्ड ऑफ कंट्रोल प्रधान चार्ल्स वुड ने जुलाई 1854 में भारतीय शिक्षा की एक व्यापक योजना तैयार की जिसे वुड डिस्पेच कहा गया है। इसको ब्रिटिश भारत ने एक महान क्रांतिकारी कदम माना। प्रसिद्ध वुड के प्रस्ताव में 100 के लगभग शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा माध्यम, सुधारों और उसके कार्यान्वयन पर जोर दिया गया। शिक्षा का माध्यम यद्यपि अंग्रेजी रखा गया, लेकिन देशी भाषाओं के विकास और साहित्य रचना पर भी जोर दिया गया। मुंबई, मद्रास एवं कोलकाता विश्वविद्यालय 1857 में अस्तित्व में आए। ग्राम स्तर पर देशी भाषा के माध्यम से अध्ययन हेतु पाठशालाएं खोली गई। जिलों में हाई स्कूल, वर्नाक्यूलर स्कूल कॉलेज खोले गए।

पहली बार स्त्रियों की शिक्षा पर ध्यान दिया गया। भारत में जातिगत भेदभाव से परे सर्वसाधारण की शिक्षा का पथ प्रशस्त हुआ। एक प्रकार से शिक्षा में अतीत और वर्तमान का समन्वय हुआ और धर्मनिरपेक्षता पर बल दिया गया। यद्यपि वुड डिस्पैच की यह कहकर आलोचना की जाती है कि इससे भारतीय भाषाएं गौण हो गई, अंग्रेजी भाषा संस्कृति का प्रथम चरण प्रधान हो गया जिसके लाभ उच्च जातियों, जमींदार, सामंत वर्ग ने उठाए।

सन 1857 का गदर : वुड प्रस्ताव के तुरंत बाद 1857 के गदर के कारण पूरे भारत में अशांति फैल गई। यह प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जाता है, जिसमें कुछ राजा सामंत भी विद्रोह के लिए उतावले हो गए। देसी पलटन भी दिग्भ्रमित हो गई। जनता के कुछ वर्ग देसी पलटन, राजे रजवाड़े के भड़कावे में आ गए, लेकिन कंपनी की संगठित फौजी ताकत तथा ब्रिटेन के लड़ाकू सैनिकों के आ जाने, गोला बारूद, तोपखाने के सामने गदर के विद्रोही परास्त हो गए। 1858 में गदर की समाप्ति पर ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन सीधे ब्रिटिश ताज के हाथों में आ गया।

हंटर आयोग (1882)

चार्ल्स वुड डिस्पैच के पश्चात लॉर्ड रिपन ने विलियम हंटर की अध्यक्षता में 1852 में हंटर आयोग गठित किया। इस आयोग ने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की प्रगति की समीक्षा की। हंटर आयोग ने सिफारिश की प्राथमिक शिक्षा प्रशासन के अधिकार में सौंप देना चाहिए। यह व्यवस्था आज तक लागू है। पादरियों ने उच्च शिक्षा प्रसार में रुचि नहीं दिखाई। उनका विशेष कार्य या मुख्य उद्देश्य आदिवासियों और अस्पृश्यों का धर्मांतरण करना था। जिसमें वह कुछ सफल भी हुए। विशेषतया नार्थ-ईस्ट, सेंट्रल इंडिया और दक्षिण भारत मे वे अधिक प्रभावी हुए। यहां आदिवासी और दलित अधिक संख्या में थे।

मुस्लिम जन जागरण और मुस्लिम शिक्षा : सर सैयद अहमद खां 19वीं सदी के अंतिम दशकों में मुस्लिम नवजागरण के अग्रदूत और मुस्लिम आधुनिक शिक्षा के प्रबल समर्थक बने। तब तक दलित अस्पृश्यों में ऐसा कोई नेता नहीं जन्मा था। सर सैयद मुस्लिम एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज की दिशा में पहले एक प्राइमरी स्कूल सन् 1875 में खोला। सन् 1877 में 2 वर्ष बाद इसे कॉलेज का रूप दिया गया जिसका उद्घाटन लार्ड लिटन ने किया। उत्तर प्रदेश के गवर्नर विलियम मूर ने अलीगढ़ में इसके लिए भूमि का प्रबंध किया। सर सैय्यद ने धनी मानी मुस्लिम घरानों, नवाबों, सेठ-साहूकारों, जमींदारों से दान में मोटी रकम जुटाई।

इस प्रकार सर सैय्यद ने भारत में मुस्लिम समाज में अंग्रेजी शिक्षा, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की नींव डाली। राजकाज में भागीदारी की आवाज उठाई और अलीगढ़ आंदोलन 1947 के भारत विभाजन का प्रमुख कारण बन गया।

हिंदू विश्वविद्यालय : यही काम आगे चलकर हिंदुत्व, वैदिक शिक्षा पद्धति तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की दिशा में नवजागरण के लिए महामना मदन मोहन

मालवीय ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना करके किया।

भारतीय विश्वविद्यालय आयोग 1902

बीसवीं सदी के प्रारंभ होते ही भारत में देशभक्ति, राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता के साथ-साथ उच्च शिक्षा की लहर चल पड़ी थी। जनवरी 1902 में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की स्थापना की गई। वायसराय लार्ड कर्जन एक वर्ष पूर्व 1901 में शिमला में एक गुप्त शिक्षा सम्मेलन बुला चुके थे जिसमें प्रत्येक प्रांत के अंग्रेज शिक्षाविद्, शिक्षा संचालक और ईसाई धर्म प्रचारकों की संख्या अधिक थी। कर्जन ने इसी सम्मेलन में अपने शिक्षा संबंधी विचार प्रकट किए। इसमें एक भी भारतीय शामिल नहीं किया गया था।

शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण रखने का सीधा अर्थ शिक्षा कार्य सीमित करना और उस पर अंग्रेजी राज का प्रभुत्व रखना था। कर्जन भारतीय संस्कृति का विरोधी था। उसकी आलोचना हुई, लेकिन 1902 के भारतीय विश्वविद्यालय आयोग ने शिक्षा को और व्यापक बनाने की बात की। इसी की सिफारिश पर भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम 1904 बना।

डॉ. अम्बेडकर का उदय

बीसवीं सदी के प्रथम तीन दशकों में महाराष्ट्र की वीर प्रसविनि भूमि से बी. आर. अम्बेडकर के रूप में एक ऐसे दलित नेता का उदय भारतीय सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक क्रांति, शैक्षणिक-सांस्कृतिक नवजागरण का काल है जिसमें पांच हजार साल से दासता और गरीबी का पीढ़ी-दर-पीढ़ी बोझ ढोते करोड़ों अस्पृश्य लोगों की मुक्ति का संग्राम एक सही मायने में स्वर्णिम नवीन अध्याय बन गया। अम्बेडकर युग में दलितों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ा। इससे राजनीतिक चेतना उदित हुई। मानव अधिकारों का पथ प्रशस्त हुआ। प्रथम बार दलितों की सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित हुई जो आर्थिक उन्नति का आधार बन गई। बाबा साहेब बराबर ब्रिटिश सरकार को चेतावनी देते रहे। निसंदेह अम्बेडकरी दलित मुक्ति आंदोलन स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान एक नई क्रांति, एक नए समाज की रचना के रूप में भारत भूमि पर चला था जिसके राष्ट्रनायक बाबा भीम थे। युवा, तेजस्वी, शतसूर्यों की आभा वाले ज्योतिपुरूष। उनके व्यक्तित्व का लोहा अंग्रेज जाति भी मानती थी, जिनका साम्राज्य विश्व के कोने-कोने में फैला था। देशी नेता, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करते थे, लेकिन स्वयं या अपनी संतानों को विदेश पढ़ने भेजते थे।

अंग्रेजी शासन का पुर्जा बनने के लिए आईसीएस परीक्षा में बैठने के लिए पुत्र-पुत्रियों को प्रोत्साहित करते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब स्वतंत्रता का पथ प्रशस्त होने लगा जिनका आवास डॉ. अम्बेडकर को बहुत पहले था तो राष्ट्रवाद की, देशभक्ति की चादर ओढ़कर ये नेता सत्ता हस्तांतरण, भारत विभाजन समेत देश की सौदेबाजी और सत्ता में भागीदारी क लिए विह्वल, उद्विग्न हो गए थे।

डॉ. अम्बेडकर जो उन दिनों अपनी प्रतिभा, योग्यता, अनुभव, राष्ट्रवाद, देशभक्ति में किसी से कम नहीं थे और वायसराय की कार्यकारिणी में 1942 से 1946 तक युद्धोस्तर कार्य कुशलता और भारत के पुनर्निर्माण में अहम भूमिका निभा चुके थे, यह जानकर बहुत शंकित थे कि अंग्रेज कौम दलितों को बहुसंख्यक हिंदुओं के भरोसे छोड़ रही है, जिनके पूर्वजों ने पांच सहस्त्र वर्ष की अवधि में करोड़ों लोगों के मानवाधिकारों, शिक्षा के अधिकारों, राजनीतिक सत्ता, आर्थिक समानता से दूर रखा और अछूत या दास बनाकर रखा है।

डॉ. अम्बेडकर इंग्लैण्ड में सभी ब्रिटिश नेताओं से मिले जिनमें चर्चिल भी थे, लेकिन उनके उत्तर गोलमोल थे, निराशाजनक थे। किसी प्रकार वे बंगाल से संविधान परिषद के सदस्य निर्वाचित हुए। फिर भी युगचेता डॉ. अम्बेडकर ने अपनी प्रतिभा से, अपने विवाद गहन अध्ययन और अनुभव के आधार पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की सहमति से संविधान निर्माण का कार्यभार ग्रहण कर ही लिया क्योंकि उस समय पूरे देश में उनके समकक्ष कोई भी स्वतंत्र भारत के संविधान का निर्माण करने के योग्य ही नहीं था। उनके अध्यक्ष बनने का गांधी, सरदार पटेल, नेहरू आदि ने स्वागत किया।

जो अन्य सदस्य बने उनमें किसी ने भी कोई विशेष दिलचस्पी और योग्यता का परिचय नहीं दिया। इसी संविधान के बल पर, इसी की यथा समय सत्ता के प्रभाव से भारत का एक प्रभुत्व संपन्न गणराज्य के रूप में शासन चल रहा है। अपनी समस्याएं, चुनौतियां बहुत हैं। लेकिन भारत उनका सामना करने में सक्षम है जिसकी शक्ति, ऊर्जा मार्गदर्शन बाबा भीम रचित भारतीय संविधान से प्राप्त होता आया है।

आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा अंग्रेजी राज की देन : डॉ. अम्बेडकर का मानना था यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान, सांस्कृतिक चेतना

दलितों के उत्थान में सहायक है। इसीलिए वे मानते थे नवजागरण के कारण दलित मुक्ति का पथ प्रशस्त हुआ है। जिसमें अंग्रेजी शिक्षा-संस्कृति का महत्व है। उन्होंने 1930-32 में ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन की गोलमेज परिषद के समय आलोचना भी की थी कि दलितों के उत्थान के प्रति उत्साहित नहीं है। इसी के बाद में भारत में दलित क्रांति का बीजारोपण हुआ। हिंदू उच्च जातियां, सामंत-जमींदार, राजे-रजवाड़े नहीं चाहते थे कि दलित शिक्षा प्राप्त कर आगे बढ़ें।

डॉ. अम्बेडकर ने यह भ्रम तोड़ दिया कि राष्ट्रनिर्माण में दलित जातियां किसी से पीछे हैं। लेकिन उन्हें उच्च शिक्षा मिलनी चाहिए। राजनीतिक अधिकार मिलने चाहिए। जात-पात खत्म होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर महाराजा बड़ौदा और कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति शाहू महाराज के प्रशंसक थे जो दलित शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी थे।

दोनों ने ही बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में डॉ. अम्बेडकर को उच्चतम शिक्षा पाने के लिए प्रोत्साहित किया, आर्थिक सहायता दी। तभी से डॉ. अम्बेडकर समझ गए थे कि बिना सरकारी प्रोत्साहन के दलित शिक्षा का प्रचार-प्रसार असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। वे फुले के दलित स्त्री शिक्षा के कार्यों से भी प्रभावित हुए थे।

उच्च शिक्षा के लिए लालायित

भारत के अनुमानतः 25 करोड़ दलितों में जिनमें (स्वतंत्रता पूर्व के) अस्पृश्य, भूमिहीन खेत किसान, घूमंतू जातियां, पहले की अपराधशील जातियां आदि आदि शामिल है, उनकी संताने शिक्षा पाने के लिए लालायित हैं जिसकी नींव पहले अम्बेडकर ने अपने सामाजिक राजनीतिक संघर्ष के दौरान डाली थी।

डॉ. अम्बेडकर की प्रेरणा से, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि करोड़ों अस्पृश्यों की नई पीढ़ी/संतानों में शिक्षा की लालसा जाग्रत हुई है। शिक्षा प्राप्ति का अधिकार अब एक मौलिक अधिकार बन गया है।

पूरे भारत में एक शताब्दी पूर्व दलित शिक्षा शून्य के बराबर थी। साम्राज्यवादी भारत में वुड्स डिसपैच के पश्चात ही भारत में अंग्रेजी शिक्षा का चलन बढ़ा और काफी लंबे अरसे के बाद बीसवीं सदी के शुरू में व्यापक रूप से हीन जातियों में भी शिक्षा पाने की होड़ लगी। उसके प्रेरणा जोत डॉ. अम्बेडकर थे। गुलाम-हिंदुओं के गुलाम-दलित और आदिवासी समाज में शिक्षा का चलन लगभग एक शताब्दी बाद बीसवीं में ही आया, जिसमें डॉ. अम्बेडकर का योगदान सर्वोपरि है।

कृषि उत्पादन वितरण पर उच्च जातियों की प्रभुता

सवर्ण जातियों में ब्राह्मण और सामंत वर्ग के क्षत्रिय पांच हजार साल से सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से कुचले, शोषण के शिकार लोगों में जाति व्यवस्था के सोपान द्वारा, ऊंच-नीच का भेद पैदा करके ही कृषि समेत उत्पादन और वितरण के समान साधनों पर अधिपत्य स्थापित करके राज करते आए हैं। डॉ. अम्बेडकर ने अपने शोध प्रबंधों में इसका जिक्र भी किया है। अब तक वैदिक वर्ण व्यवस्था शोषण का अभेद्य हथियार रही है। शूद्र-दलित सदियों तक शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रखे गए। समायाधिकार और मानवीय अधिकारों की बात स्वतंत्रता आंदोलन और डॉ. अम्बेडकर के दलित मुक्ति आंदोलन से बलवती हुई।

डॉ. अम्बेडकर नवजागरण के अग्रदूत

बीसवीं सदी में अकेले डॉ. अम्बेडकर दलितों में व्यापक चेतना, शिक्षा, अधिकारिता के प्रति जागरूकता के लिए उसी प्रकार समर्थ थे, जिस प्रकार लगभग ढाई हजार वर्ष ईसा पूर्व छठी शताब्दी में जन्में गौतम बुद्ध ने वैदिक संस्कृति, वैदिक का वर्ण व्यवस्था, पुरोहित ब्राह्मण वर्ग की समाज पर अधिकारिता, तमाम सामाजिक बुराइयों, यज्ञ में पशुबलि, अंधविश्वासों को बौद्ध धर्म की स्थापना करके समाप्त कर दिया था।

बुद्ध का ब्राह्मणी सत्ता द्वारा विरोध

एक प्रकार से बुद्ध का विरोध ब्राह्मण श्रेष्ठता और उसके द्वारा सामाजिक शोषण, धार्मिक दिग्भ्रम, ऊंच-नीच की भावना के घोर विरोध का ही क्रांतिदर्शी आंदोलन था।

फूले के प्रशंसक डॉ. अम्बेडकर

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक जीवन में प्रवेश से पूर्व माली जाति के ज्योतिबा फुले सामाजिक-शैक्षिक क्रांति का प्रभावी आंदोलन उन्नसवीं शताब्दी के दौरान दृढ़ता पूर्वक चला चुके थे, जिसका पूरा ज्ञान बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर को था। फुले प्रथम युगपुरूष थे जिन्होंने महाराष्ट्र की दलित-शूद्र जातियों की स्त्रियों के लिए शिक्षा के अधिकार की लड़ाई लड़ी थी। विधवाओं और परित्यक्ताओं के लिए सक्रिय आंदोलन छेड़ा था। अपने साहित्य से दबे-कुचले समाज में नवजागरण की लहर फैलाई थी।

इसका हम पहले भी जिक्र कर चुके हैं। हम जानते हैं कि बीसवीं सदी के शुरूआती ढाई दशकों में युवा अम्बेडकर ने अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय और बाद में ग्रेट ब्रिटेन के लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स तथा ग्रेज इन में उच्चतम शिक्षा प्राप्त की थी। वे विश्व के उन सर्वाधिक शिक्षित योग्यतम व्यक्तियों में थे जिन्हें उच्च शोध द्वारा डिग्रियां प्राप्त हुई थीं। उन्होंने दिखा दिया था कि विपरीत परिस्थितियों के होते हुए भी दलित वर्ग के लोग उच्च शिक्षा प्राप्त कर समाज के लिए योगदान प्रदान कर सकते हैं। उन्होंने दलितों के समग्र

विकास, राजनीतिक-सामाजिक अधिकारों के लिए उच्च शिक्षा पाने के लिए जो संघर्ष किया वह इतिहास का स्वर्णिम विषय बन चुका है।

साइमन कमीशन : नए युग का सूचक

सन् 1928 में भारत में जब अंग्रेजों ने साइमन कमीशन को दलितों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक और रोजगार विषयक वास्तविक स्थिति का जायजा लेने के लिए भेजा तो दलितों की हिमायत का झूठा दावा भरने वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने कमीशन का देश भर में जोरदार विरोध किया, गुस्सा जाहिर करने के लिए काले झंडे दिखाए लेकिन डॉ. अम्बेडकर और उनके अनुयायियों/समर्थकों ने जगह-जगह इसका स्वागत किया।

आज जो दलितों को शिक्षा प्राप्त हुई है, राजनीतिक अधिकार मिले हैं, आरक्षण के द्वारा नौकरियां मिली है, उसके मूल में बाबासाहेब के सक्रिय संघर्ष और प्रयास का ही फल स्पष्ट दिखता है। लेखकों, विचारकों और शोध कर्ताओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया।

मुक्तिदाता : संविधान निर्माता डॉ. अम्बेडकर

डॉ. अम्बेडकर दलित मुक्तिदाता ही नहीं भारत को मार्गदर्शन प्रदत्त करने वाले संविधान के निर्माता भी हैं जिनके आधार पर भारतीय लोकतंत्र चल रहा है। भारतीय लोकतंत्र एशिया के लिए ही नहीं वरन् पूरे विश्व को चकित किए हुए है कि 125 करोड़ देशवासी भारत की एकता और संप्रभुता को बड़ी सफलता के साथ कायम किए हुए हैं। अम्बेडकर रचित भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों के शिक्षा, रोजगार, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक उन्नयन और राजनीतिक सत्ता में आरक्षण के सभी तत्व विद्यमान हैं।

सन् 1920 से सन् 1948 के दौरान ब्रिटिश सम्राज्यवाद को डॉ. अम्बेडकर ने अपने भाषणों, लेखों, खोजपूर्ण पुस्तकों, स्मरण पत्रों से दलित नवजागरण और शिक्षा की व्यापक व्यवस्था करने के लिए जागृत किया था। 1930 से 1932 के दौरान जेम्स पेलेस, लंदन में संपन्न हुए गोल-मेज परिषद वार्ताओं के दौरान अपने अकाट्य तर्कों से डॉ. अम्बेडकर ने सदियों से सवर्ण जातियों की दासता और शोषण की शिकार दलित जातियों के क्रमिक उत्थान, राजनीतिक अधिकार, सामाजिक अधिकार, शिक्षा और नौकरियों में प्राथमिकता तथा प्रत्येक क्षेत्र में संवैधानिक तौर पर आरक्षण की व्यवस्था से एक नए युग का सूत्रपात करने का बीजारोपण किया था। यह एक ऐतिहासिक-सामाजिक यथार्थ है जिससे हर देशवासी परिचित है। इसीलिए डॉ. अम्बेडकर युग पुरूष, सदी के महानायक बन गए हैं।

1947-51 तक केंद्रीय मंत्रिमंडल में वे कानून मंत्री बने। संविधान का वर्तमान स्वरूप उनकी ऐतिहासिक देन है। 1956 में वे धार्मिक क्रांति के मसीहा बने।

गोल मेज परिषद वार्ताओं के दौरान अपने अकाट्य तर्कों से डॉ. अंबेडकर ने सदियों से सवर्ण जातियों की दासता और शोषण की शिकार दलित जातियों के क्रमिक उत्थान, राजनीतिक-सामाजिक अधिकार, शिक्षा और नौकरियों में प्राथमिकता तथा प्रत्येक क्षेत्र में संवैधानिक तौर पर आरक्षण की व्यवस्था से एक नए युग का सूत्रपात करने का बीज बोया था।

अंग्रेज देर से आए, जल्दी चले गए

एक प्रसिद्ध दलित चिंतक के कथनानुसार 'अंग्रेज भारत में देर से आए और जल्दी चले गए' इसका एक निहितार्थ यह भी है कि डॉ. अम्बेडकर जैसे नायकों की प्रेरणा से दलितोत्थान का काम शुरू तो हुआ लेकिन ब्रिटिश सत्ता की भारत से विदाई के बाद बहुत कुछ काम अधूरा रह गया।

अंग्रेजी शिक्षा से चीन वंचित रहा। ब्राजील, नेपाल, तिब्बत भी दूर रहे। अफगानिस्तान भी पीछे रहा। आधुनिक युग में, वैश्वीकरण के चलते इन देशों में पिछड़ापन घर कर गया। यद्यपि पाकिस्तान और बांग्लादेश ब्रिटिश शिक्षा पद्धति को अपनाए हुए और विशाल भारत से अलग हुए देश हैं। डॉ. अम्बेडकर ने गांधी जी को स्पष्ट बता दिया था कि वे अपने लोगों को हाथ करघा बुनकर, खादी बुनने, सूत कताई (यानी चरखे) से दूर रखना चाहते हैं। वे उन्हें बढ़ई, कुम्हार भी नहीं बनाना चाहते। वरन् वे उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त कर, विज्ञान और तकनीक में, चिकित्सा के क्षेत्र में ऊंचे से ऊंचा पद पाने के लिए सलाह दे रहे हैं और प्रयत्नशील हैं। डॉ. अम्बेडकर का यह सपना सच भी हुआ।

युवाओं को उच्च शिक्षा हेतु विदेश भेजा

जब वे वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य थे तब उन्होंने एक दर्जन दलित युवाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए जिसमें विज्ञान, इंजीनियरिंग की भी शिक्षा शामिल थी, छात्रवृत्ति

दिलाकर विदेश भेजा था। उनके बाद भी यह परंपरा आज भी कायम है, जिसके मूल में बाबासाहेब की विचारधारा साफ दिखती है। डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की इस दिशा में पहल प्रशंसनीय है।

भारत की न्याय प्रणाली में दलित जजों की कमी खटकती है। आज ऐसी कोई सशक्त प्रभावी आवाज न सुनाई देती है, न दिखाई देती है जो इस मूल प्रश्न पर ध्यान दे।

अम्बेडकर विश्वविद्यालयों की बाढ़

आज देश में जगह-जगह डॉ. अम्बेडकर के नाम से कॉलेज और विश्वविद्यालयों की बाढ़ सी आ गई है। लेकिन उच्च शिक्षा के इन विद्या केंद्रों पर पूरा अधिपत्य। विडंबना यह है कि इनकी सत्ता एक-दो स्थान को छोड़कर उच्च वर्ग के लोगों के हाथ में है और डॉ. अम्बेडकर का नाम लगाकर ऊंचे पद हथियाने का एक जरिया बना लिया है, क्योंकि इन संस्थानों में अधिकांशतः दलित-कमजोर वर्ग की उपेक्षा ही अधिक होती है। इस पर सरकारी अंकुश लगना चाहिए।

दलित वर्ग के केंद्र में चार-छः मंत्री, राज्यों में इसी प्रकार मंत्री, संसद और विधानसभाओं में चुने हुए सदस्य, आयोगों के अध्यक्ष और सदस्य करोड़ों बेरोजगार दलित युवकों के किसी काम के नहीं है। यद्यपि ये युवा उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। इस पर राष्ट्रीय स्तर पर कोई नहीं सोचता। आज आरक्षण के कारण चुने गए प्रतिनिधियों का एक बड़ा वर्ग उभर आया है। गरीब सर्वहारा दलित और संपन्न दलित वर्ग के बीच में एक बड़ी खाई बन गई है। डॉ. अम्बेडकर अपने जीवनकाल में यह बात समझ गए थे।

पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी

डॉ. अम्बेडकर ने अपने उत्कर्षकाल में जब वे वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य थे, जन-जन की शिक्षा के लिए पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की। इसका मुख्य कार्य क्षेत्र यद्यपि महाराष्ट्र में दलितों में शिक्षा और साहित्य का प्रचार एवं प्रकाशन करना था, लेकिन इसका प्रभाव पूरे देश के दलितों में गया। वे भी लोक शिक्षा के क्षेत्र में जागरूक बने। पंजाब के रामदसिया और मजहबी सिख समाज में शिक्षा के प्रति अनुराग बढ़ा। कुरीतियां, अंधविश्वास मिटाने का वैसे भी सिखों द्वारा प्रयास जारी था। आर्य समाज भी पंजाब में सक्रिय था।

इसी प्रकार डॉ. अम्बेडकर से प्रेरणा पाकर उत्तर भारत के विशेषतया संयुक्त प्रांत - आगरा एवं अवध (अब उत्तर प्रदेश) के दलित समुदाय में भी शिक्षा के प्रति प्रेम बढ़ा। ब्रिटिश शासन उस समय द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के परिणाम झेल रहा था। कांग्रेस का आंदोलन तीव्र हो गया था। नेता यद्यपि कारागार में थे फिर भी सरकार के लिए सिरदर्द बने हुए थे। डॉ. अम्बेडकर ने उन्हीं दिनों महाराष्ट्र में सिद्धार्थ कॉलेज की स्थापना में सक्रियता दिखाई जिससे दलित शिक्षा को नए आयाम प्राप्त हुए।

अम्बेडकर अपने जीवन-काल में जो कुछ कर गए हैं उसी का प्रतिफल आज दिखाई दे रहा है। 'शिक्षा का अधिकार' गरीब-दीन-हीन, उपेक्षित-वंचित बालकों के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है जो समाजिक-आर्थिक चुनौतियों के शिकार दलित-शोषित समाज से ताल्लुक रखते हैं। कच्चे-पक्के आवास में रहते हैं, जहां सुविधाओं का पूर्णतया अभाव है। डॉ. अम्बेडकर ने जिस समता के सिद्धांत का सपना देखा था और उसे संविधान में मौलिक अधिकार के अंतर्गत शब्दों में अवसर की समानता की शक्ल प्रदान की थी, वह इस विशाल देश में जो तरह-तरह की विसंगतियों से परिपूर्ण है, सच सा लगता है।

विदेशी-विद्वान जो वर्षों से डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक-शैक्षिक योगदान पर गहन शोध करते हुए अपने विचारों की मार्केटिंग करके अपने को धन्य समझ रहे हैं अभी तक समझ नहीं पाए कि अम्बेडकरी शांतिपूर्ण सहज सा दिखने वाला आंदोलन भ्रष्ट नेताओं, रूढिवादी तत्वों, स्वार्थी सीमित सोच वाले तथा कथित दलित नेतृत्व की भेंट चढ़ गया लगता है। कई दलित नेता-नेत्रियां अरबपति हैं, दलित नौकरशाह भी कम नहीं है, वे हम आंदोलन के सबसे बड़े दुश्मन हैं। वर्तमान मोदी सरकार जागरूक अवश्य प्रतीत होती है।

अम्बेडकरी साहित्य : दलित चेतना का दस्तावेज

भारत सरकार के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अंतर्गत स्वायत्तशासी निकाय के रूप में डॉ. अम्बेडकर शताब्दी वर्ष सन् 1991 से कार्यरत डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान अम्बेडकर समग्र वाङ्मय हिंदी और भारतीय भाषाओं में प्रकाशित करने की योजना में तन्मयता से लगा हुआ है। यह बड़ा कठिन कार्य है लेकिन स्तुत्य कार्य योजना है।

इससे डॉ. अम्बेडकर के दलित नवजागरण की दिशा में किए गए सभी कार्यों से पूरा देश और दलित समाज के लोग परिचित हो रहे हैं। अंतिम दिनों में डॉ. अम्बेडकर ने धर्म की शिक्षा दी। स्वयं एवं अपने लाखों अनुयायियों समेत बौद्ध धर्म अपना कर उन्होंने एक धर्म क्रांति की और बौद्ध धर्म को जीवंत बनाया।

6 दिसंबर 1956 को इस महापुरूष का महाप्रयाण हुआ। लेकिन भारत के पुनर्निर्माण में सामाजिक जागरण में, सांस्कृतिक नवोत्थान और दलित समग्र शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाओं को पीढियां याद करेंगी।◆

(लेखक प्रमुख चिंतक और दलित साहित्य के अग्रणी लेखक हैं।)

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ध्येयनिष्ठ विराट व्यक्तित्व

■ प्रो. राजकुमार फलवरिया

> "एक दिन वे अपने पिता से मिलने गोरे गांव गए थे और रेलवे स्टेशन पर जब कोई लेने नहीं आया तो बड़ी मुश्किल से एक बैलगाड़ी गांव जाने के लिए तैयार हुई किन्तु गाड़ीवान को जैसे ही पता चला कि वह अछूत महार है तो उसी समय इनको नीचे धकेल दिया। इन सैकड़ों घटनाओं ने बालक भीम के मन को झकझोर दिया।"

बाबासाहेब का जीवन एक तपस्वी जीवन था, जिन्होंने अस्पृश्यता, सामाजिक उपेक्षा, धार्मिक घृणा के विष दंश को देखा ही नहीं अपितु सहा भी। घोर निराशा और अंधकार के वातावरण में असंख्य वंचित एवं असहाय लोगों के लिए दीपक बनकर, स्वयं को तिल-तिल कर जलाया और समाज को जागृत किया। बाबासाहेब का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष और संघर्ष के बीच में रहा। बाबासाहेब को जानने व समझने से पूर्व बाबासाहेब के संघर्षरत जीवन यात्रा को जानना व समझना चाहिए।

बाबासाहेब का जन्म उस समय अस्पृश्य कहे जाने वाले 'महार' परिवार के श्री रामजी सकपाल, जो अंग्रेजी सेना में सुबेदार मेजर पद पर थे। जब श्री रामजी सकपाल मध्य प्रदेश के इन्दौर जिले की सैनिक छावनी महू में तैनात थे वहीं 14 अप्रैल, 1891 को भीमराव का जन्म हुआ। 1894 में सूबेदार रामजी सकपाल रिटायर होकर बम्बई में रहने लगे, बालक भीम अभी पाँच वर्ष के थे कि माता भीमाबाई का देहान्त हो गया, पिता श्री रामजी सकपाल बालक भीम को पढ़ाना चाहते थे, अस्पृश्य जाति के कारण स्कूल में बड़े कष्ट से प्रवेश मिला, बालक भीम ने बाल्यकाल से ही अस्पृश्यता के कटु अनुभव को देखा जैसे छात्रों से दूर बैठना, घड़े को न छुना और नाई के द्वारा बाल न काटना, अध्यापक द्वारा उत्तर पुस्तिका को न जांचना।

एक दिन वे अपने पिता से मिलने गोरे गांव गये थे और रेलवे स्टेशन पर जब कोई लेने नहीं आया तो बड़ी मुश्किल से एक बैलगाड़ी गांव जाने के लिए तैयार हुई किन्तु गाड़ीवान को जैसे ही पता चला कि वह अछूत महार है तो उसी समय इनको नीचे धकेल दिया। इन सैकड़ों घटनाओं ने बालक भीम के मन को झकझोर दिया। किन्तु जहाँ एक ओर समाज व्यवस्था ने चोट पहुँचाई वहीं दूसरी ओर हाईस्कूल के ब्राह्मण शिक्षक ने अपने मेधावी छात्र भीम को अपना उपनाम अम्बेडकर दिया। वहीं ब्राह्मण शिक्षक श्री पेंडसे से उनको स्नेह, प्यार और दुलार मिला। जब पहली बार एक अछूत महार जाति का बालक मैट्रिक पास करता है। उसके अभिनन्दन कार्यक्रम में श्री कृष्ण जी अर्जुन केलुस्कर ने अध्यक्षता की और आगे की पढ़ाई के लिए छात्रवृति मिले इसका भी प्रयास किया।

भीमराव ने 1912 में बी.ए. एल्फिस्टन कॉलेज से उत्तीर्ण की। घर की आर्थिक स्थिति ठीक ना होने के कारण बड़ौदा रियासत में लैफ्टीनैंट की नौकरी की। लेकिन 15 दिन में ही पिताजी की अस्वस्थता की खबर पर बम्बई लौट आना पड़ा। 3 फरवरी 1913 को पिता का देहान्त हो गया। अब भीमराव पर परिवार का बोझ और आगे की पढ़ाई जारी रखने की चुनौती थी और बड़ौदा की रियासत के समझौतों के साथ जुलाई 1913 को अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में दाखिला

लिया। डॉ. भीम उस समय अस्पृश्य जाति के प्रथम छात्र थे जो उच्च शिक्षा हेतु विदेश पढ़ने गए। वहाँ 18-18 घंटे पढ़कर एम.ए. और पीएच.डी. की पढ़ाई पूर्ण की और 1916 में अमेरिका से लन्दन एम.एस.सी. और बी.एस.सी. की पढ़ाई के लिए गए। किन्तु उनको बीच में ही भारत लौट आना पड़ा और समझौते के तहत बड़ौदा रियासत में नौकरी करनी पड़ी, किन्तु वहाँ भी अस्पृश्यता के विष को पीना पड़ा।

बड़ौदा रियासत के सैन्य सचिव होने पर भी उनको कोई घर नहीं मिला। पारसी धर्मशाला में पारसी बनकर ठहरे किन्तु पता चलते ही पारसी धर्मशाला से सामान सहित बाहर कर दिया गया और यहीं डॉ. अम्बेडकर के जीवन में एक नया मोड़ आया कि मेरे जैसे शिक्षित व्यक्ति को यदि समान अधिकार नहीं मिल सकता तो मेरे समाज के करोड़ों बन्धु तो पशु तुल्य जीवन जीने के लिए मजबूर रहेंगे। अब मेरे समाज को इस अस्पृश्यता के कलंक से मुक्ति दिलाना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। मुम्बई आकर सिडेनहम कालेज में 1918 में राजनैतिक अर्थशास्त्र के पद पर कार्य आरम्भ किया और कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति शाहू जी महाराज की सहायता से पुनः लन्दन अपनी अधूरी पढ़ाई को पूरा करने के लिए गए। लन्दन से एम.एस.सी. और लॉ की डिग्री लेकर भारत लौटे। 1923 में भारत लौटने के साथ ही बैरिस्टर बन कर अब उन्होंने समाज की लड़ाई लड़ने का संघर्ष आरम्भ किया और जीवन पर्यन्त 6 दिसम्बर, 1956 तक इस देश के वंचितो, दलितों और महिलाओं के उत्थान और सम्मान की लड़ाई लड़ना आरंभ किया।

बाबासाहेब का जीवन ध्येयनिष्ठ विराट और बहुआयामी व्यक्तित्व रहा, किन्तु इस देश का दुर्भाग्य रहा कि गत् 50 वर्षों में बाबासाहेब के व्यक्तित्व को केवल संविधान निर्माता और दलितों के मसीहा के रूप में ही दिखाने का प्रयास किया। अपितु बाबासाहेब का सम्पूर्ण समाज व राष्ट्र निर्माण में अद्वितीय योगदान रहा।

सामाजिक क्रांतियों के इतिहास में बाबासाहेब का महाड़ सत्याग्रह एक मील के पत्थर की तरह है, महाड़ के चावदार तलाब में पशु तक पानी पी सकते थे किन्तु अस्पृश्य लोगों को पानी पीने का अधिकार नहीं था, इसके विरोध में 20 मार्च, 1927 को अपने ही सहयोगियों के साथ चावदार तलाब, महाड़ ने पानी पीकर एक नई क्रांति को जन्म दिया।

सन् 1923 को लंदन से बैरिस्टर बनकर लौटने पर अपना जीवन उपेक्षित, वंचितों के उद्धार में जुट गये, 20 जुलाई, 1924 को बहिष्कृत हितकारिणी सभा का स्थापना कर सामाजिक जीवन आरंभ किया, इस सभा के माध्यम से देश के वंचितों के लिए संघर्ष आरम्भ किया। सन् 1924 में समता सैनिक दल का गठन किया। सामाजिक क्रांतियों के इतिहास में बाबासाहेब का महाड़ सत्याग्रह एक मील के पत्थर की तरह है, महाड़ के चावदार तलाब में पशु तक पानी पी सकते थे किन्तु अस्पृश्य लोगों को पानी पीने का अधिकार नहीं था, इसके विरोध में 20 मार्च, 1927 को अपने ही सहयोगियों के साथ चावदार तलाब, में पानी पीकर एक नई क्रांति को जन्म दिया। सन् 1929 में उन्होंने घोषणा कि यज्ञोपवीत पर केवल ब्राह्मणों का ही अधिकार नहीं अपितु सभी हिन्दुओं का समान अधिकार है, इसके साथ ही हज़ारों अस्पृश्य बन्धुओं को यज्ञोपवीत करवाया। सन् 1930 में नासिक के कालाराम मन्दिर में प्रवेश हेतु सत्याग्रह किया और आह्वान किया जितना अधिकार मन्दिर में स्पृश्यों का है उतना ही अधिकार अस्पृश्य कहे जाने वाले बन्धुओं का है। अतः कालाराम मन्दिर का आंदोलन सामाजिक क्रांति का आधार बना।

सन् 1920 के दशक में मिल मजदूरों के बीच कम्युनिस्ट संगठनों का प्रभाव था, बाबासाहेब कम्युनिस्टों की हड़तालों से दूर रहने का आग्रह करते थे। हम मजदूरों की ऐसी स्थिति नहीं है कि हम हड़ताल पर जाकर अपने और अपने परिवार को भुखमरी के कगार पर ले जाए। कम्युनिस्टों को राजनीति से प्रेरित और मजदूरों का घोर शत्रु बताया। सन् 1936 में स्वतंत्र मजदूर दल कि स्थापना की और घोषणा पत्र जारी किया। जिसमें श्रमिकों के लिए कानून बनाया जाए, नौकरियाँ देना, काम के घण्टे, वेतन, छूट्टी, सस्ते आवास आरोग्य आदि सम्बंधित कानून बनाये जायें। सन् 1938 में बम्बई विधान सभा के औद्योगिक कलह अधिनियम-1938 पारित हुआ जो मजदूर विरोधी था। बाबा साहेब ने इस विधेयक के खिलाफ 60 मजदूर संगठनों को एकत्रित व संगठित कर आंदोलन का नेतृत्व किया।

बाबासाहेब के बहुआयामी व्यक्तित्व में उनकी लेखनी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। सन् 31 जनवरी, 1920 में पाक्षिक मूकनायक पत्रिका आरम्भ की। देश के लाखों - करोड़ों दलितों व वंचितों की आवाज़ मूकनायक बना। सन् 1924 में सामाजिक आंदोलन हेतु बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किया, इन संघर्षों को लोगों तक पहुँचाने के लिए सन् 3 अप्रेल, 1927 में बहिष्कृत भारत मराठी पाक्षिक आरंभ किया, सन् 1930 में जनता के सहयोग से भूषण प्रीटिंग प्रेस, बम्बई में स्थापना की और जनता नामक पत्र निकाला, यह पत्रिका 26 वर्षों तक संघर्ष की साक्षी बनी। बाद में इसका नाम 'प्रबुद्ध भारत' रखा गया। बाबासाहेब

ने उस काल की प्रत्येक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटना पर वह बेबाकी से विचार प्रकट करते थे। उनके द्वारा लिखी पुस्तकें व लेख आज भी वंचित समाज का मार्ग दर्शन करती है। एवं उनकी कलम ने भारत को श्रेष्ठ संविधान दिया।

निःसंदेह बाबासाहेब सामाजिक व राजनैतिक क्रांति के अग्रज थे किन्तु मूलतः वह महान अर्थशास्त्री थे। उनकी एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी., एम.एस.सी., डी.एस.सी. सभी विषयों के शोध प्रबंध अर्थनीति, अर्थशास्त्र और अर्थव्यस्था से संबंधित थे। इनके शोध प्रबंध दामोदर वैली बिल 1948 में पारित, इस प्रोजेक्ट के शिल्पकार थे। कृषि क्षेत्र में अमूल्य सुझाव, खेती का राष्ट्रीयकरण, सामूहिक व सहकारी खेती, खेती में खोत पद्धति का उन्मूलन, खाद, बीज और सिंचाई सरकार की और से बजट में खेती के अधिक राशि, निजी साहुकारों पर नियत्रंण। नोबेल पुरस्कार प्राप्त अर्थशास्त्री डॉ. अमर्त्य सेन ने डॉ. अम्बेडकर को कल्याणकारी अर्थशास्त्र का जनक माना है। देश का विकास औद्योगिकीरण से होगा इसका भी महत्व बताया। आर.बी.आई. की स्थापना उनके शोध प्रबंधों के आधार पर हुई।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर 1942-1946 के काल में वायसराय की काउंसिल में श्रम मंत्री के रूप में कार्य किया। श्रम मंत्री के रूप में उन्होंने मजदूर तथा मालिकों को मिलाकर औद्योगिक क्षेत्र के लिए नई-नई नीतियां स्थापित कीं। इनमें से प्रमुख हैं- मजदूरों का न्यूनतम वेतन, काम के घण्टे, मजदूरों की भविष्य निधि, सस्ते मूल्य के अनाज की व्यवस्था, कारखानों में जलपान गृह, विश्राम आदि एवं श्रम मंत्री के नाते बाबासाहेब ने जो कार्य किया, दुर्भाग्य से उसका योग्य मूल्यांकन नहीं हो सका। महिलाओं के लिए भी उन्होंने अनेक सुविधाएँ यथा मातृत्व अवकाश के रूप में अवकाश देने का प्रावधान रखा। बाबासाहेब ने 1928 के मैटेरनिटी बेनिफिट बिल के पक्ष में विचार रखे।

आज भी बाबासाहेब के विचार व कार्य मजदूरों के बीच में तथा पूरे संगठित क्षेत्र एवं असंगठित क्षेत्र में सभी के लिए प्रासंगिक हैं। उस परिप्रेक्ष्य में हम आज की परिस्थितियों से कैसा तालमेल बैठा सकते हैं, यह विचार का विषय है।

30 अगस्त, 1947 को डा. अम्बेडकर को संविधान सभा की प्रारूप समिति का अध्यक्ष चुना गया। प्रारूप समिति के सात सदस्य थे। जिनमें एक का देहांत हो गया, एक विदेश चले गये, एक व्यक्ति ने त्याग पत्र दे दिया, दो व्यक्ति दिल्ली से दूर और अस्वस्थ थे। अतः अन्ततः संविधान का प्रारूप तैयार करने का सारा दायित्व डॉ. अम्बेडकर पर आ पड़ा। 26 नवम्बर, 1949 संविधान को तैयार कर संविधान सभा को सौंपा गया एवं इसी सभा के माध्यम से राष्ट्र को समर्पित किया।

बाबासाहेब विधि मंत्री के रूप में हिन्दू कोड बिल के शिल्पकार थे। हिन्दू कोड बिल के माध्यम से महिलाओं को समान अधिकार व सम्मान मिले इसके वह प्रबल समर्थक थे। हिन्दू कोड बिल में विधवा को पुनर्विवाह, मृतक पति की सम्पति में अधिकार, नारी मुक्ति का अधिकार, गोद लेने का अधिकार आदि का प्रावधान रखा। हिन्दू कोड बिल में सभी हिन्दू-सिख, बौद्ध, जैन आदि विभिन्न भारतीय मूल के सभी सम्प्रदाय सम्मलित किए और इस बिल के संसद में पारित न होने की स्थिति में 1951 में विधि मंत्री पद से इस्तीफा दिया।

बाबासाहेब ने 1935 में घोषणा कि "दुर्भाग्य से मैं अस्पृश्य जाति में जन्मा हूँ, यह मेरा कोई अपराध नहीं, फिर भी मैं हिन्दू के रूप में नहीं मरूंगा" और कहते हुए बौद्ध धर्म अंगीकार किया। सन् 1935 की यह घोषणा जाति व्यवस्था की समाप्ति पर अंतिम कड़ा प्रहार किया। विभिन्न मत सम्प्रदायों द्वारा प्रलोभन मिला किन्तु 21 साल बाद 14 अक्टूबर, 1956 नागपुर में बौद्ध धर्म दीक्षा ग्रहण की जिसकी जड़ें, दर्शन और आत्मा भारत में बसती है। संविधान में 'स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व" का विचार तथागत बुद्ध से प्रेरित है। तथागत बुद्ध के केन्द्रबिन्दु में धम्म है, बाबा साहेब भी धम्म को भारतीय दर्शन की आत्मा मानते थे।

बाबा साहेब का सम्पूर्ण जीवन देश के वंचितों एवं दलितों के लिए समर्पित था। उनका मानना था कि महिलाओं के विकास के बिना विकास अपूर्ण है। अपने जीवन के आरंभ से लेकर अन्त तक हम भारतीय हैं इस भाव को जागृत रखा। जहाँ एक ओर ब्रिटिश सरकार से अस्पृश्यों के लिए समान अधिकार व शिक्षा की मांग करते थे वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश आर्थिक घोषणा को अपने शोध ग्रन्थों में स्पष्ट किया। समानता के बिना स्वतन्त्रता निरर्थक है, समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व का विचार उनके बौद्ध दर्शन का परिचायक है। इस दर्शन के बिना समाज में समरसता नहीं होगी इस पर उनका दृढ़मत रहा। संविधान के रूप में भारत को अनुपम भेंट देकर भारत को एकीकृत, संगठित राष्ट्र बनाने में उनका अतुलनीय योगदान आज भी प्रासंगिक है। वे भाषाओं के आधार पर राज्यों के निर्माण के प्रबल विरोधी थे।

उनके जीवन, दर्शन और कृतित्व में राष्ट्रीय निष्ठा सर्वोपरि रहा है।◆

(लेखक सम्पादक मंडल के अध्यक्ष हैं)

शोध लेख

डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्थापित राजनीतिक प्रवेश प्रशिक्षण विद्यालय

■ शिवशंकर दास

"डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में यह विद्यालय उन्हीं के द्वारा प्रस्तावित रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (आरपीआई) को नेतृत्व प्रदान करने के लिए प्रवेश द्वार के समान था। और वह ये भी जानते थे कि, जो कार्यकर्ता आर. पी.आई. में कार्य करेंगे वह व्यवहारिक राजनीति को उपरोक्त विद्यालय में प्रशिक्षण लिए बगैर कभी समझ नहीं पायेंगे।"

बाबासाहेब अम्बेडकर (1891-1956) की 125वीं जयंती केवल भारत में ही नहीं बल्कि दुनिया के तमाम देशों में विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से धूमधाम से मनाई गई, यद्यपि, इस उमंग और उत्साह से भरे माहौल में डॉ. अम्बेडकर से सम्बंधित आज तक उपेक्षित रहे ऐसे कुछ मुद्दे इस वर्ष भी नदारद दिखे, जिनकी आज के समय में अत्यन्त आवश्यकता है, ऐसा ही एक विषय अम्बेडकर द्वारा स्थापित किया गया एक ऐसा दुर्लभ विद्यालय है जो कि राजनीति में इच्छुक युवाओं की ट्रेनिंग के लिए बनाया गया था। जिसका नाम 'राजनीतिक प्रवेश प्रशिक्षण विद्यालय' यानि ट्रेनिंग स्कूल फॉर एंट्रेंस टू पॉलिटिक्स था।

अपने आप में ये देश का एकमात्र ऐसा पहला विद्यालय था, जिसकी शुरुआत डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं 1 जुलाई, 1956 को भारत में की थी, लेकिन दुर्भाग्यवश उनकी मृत्यु-उपरांत, यह विद्यालय ज्यादा दिन तक टिक नहीं सका और किसी अनाथ-शिशु के सामान जल्द ही इसका भी अंत हो गया। 1 जुलाई 2016 को इस विद्यालय की स्थापना को 60 वर्ष होने जा रहे हैं, ऐसे में इसके माध्यम से डॉ. अम्बेडकर ने भविष्यकालीन राजनीति का जो सपना देखा था, उसके उदिष्ट दृष्टिकोण पर आज विचार-विमर्श करना अत्यन्त प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण हो जाता है।

डॉ. अम्बेडकर के निदेशन में इस विद्यालय की स्थापना मुंबई में 1956 को हुई थी। प्रारम्भ में कुल पंद्रह विद्यार्थियों ने प्रशिक्षण में प्रवेश लिया और वही इसके अंतिम विद्यार्थी भी रहे, अम्बेडकर स्वयं निदेशक और उनके सहयोगी एस. एस. रेगी इसके रजिस्ट्रार थे। स्थापना के बाद नौ महीने तक यानि जुलाई 1956 से मार्च 1957 तक ये विद्यालय संचालित रहा। लेकिन डॉ. अम्बेडकर के परिनिर्वाण के बाद ये पूरी तरह ठप्प पड़ गया। बाबासाहेब इस विद्यालय के लिए किसी ऐसे प्रधानाचार्य की खोज में भी थे, जिसका व्यक्तित्व आकर्षक हो, ज्ञानवान व सुवक्ता हो। इस विद्यालय के प्रति उनका विशेष लगाव होने की वजह से उन्होंने लगभग 10 दिसंबर 1956 का दिन विद्यालय में ट्रेनिंग ले रहे विद्यार्थियों को वक्तृत्व कौशल पर मार्गदर्शन करने के लिए भी सुनिश्चित किया था। लेकिन कुछ ही दिन पूर्व यानि 6 दिसंबर 1956 को उनका परिनिर्वाण होने के कारण उनकी ये विशिष्ठ इच्छा अधूरी ही रह गई।

यद्यपि, डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्थापित इस विद्यालय का प्रमुख उद्देश्य न केवल भारतीय राजनीति में युवा राजनीतिकों को प्रशिक्षित करना था बल्कि, उभरते राजनीतिकों को व्यवहारिक राजनीति में विज्ञाननिष्ठ, बौद्ध दृष्टिकोण (प्रज्ञा) तथा उत्तम चरित्र (शील) से सुसज्जित भी बनाना था। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि, विद्यालय में राजनीतिक प्रशिक्षण लेने वाले प्रशिक्षणार्थी समाज-विज्ञान के विभिन्न विषयों में प्रशिक्षित किए जायें और खासकर उन्हें संसदीय-विधायिका

की संपूर्ण प्रक्रिया का भी ज्ञान हो, जो किसी भी राजनीतिक व्यक्ति के लिए मूलत: जान लेना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। उनकी दृष्टि में यदि कोई उम्मीदवार चुनाव लड़ता है और वह जीत भी जाता है तो भी, अपने चुनाव क्षेत्र की समस्याओं को किस प्रकार से समझा जाए, उक्त समस्याओं से संबंधित कानून कैसे बनाएं जाएँ तथा किस प्रकार उन समस्याओं को सदन में उठाया जाए, यह यदि जनप्रतिनिधियों को मालूम न हो तो सच्चे प्रतिनिधित्व का हेतु हमारे लोकतंत्र में कभी पूरा नहीं हो सकता।

जिस समय डॉ. अम्बेडकर ने इस विद्यालय की स्थापना की थी, उस समय कई संस्थाओं में राजनीति विज्ञान को एक विषय के रूप मे तो पढ़ाया जाता था। लेकिन यह विद्यालय उन सभी संस्थाओं से एकदम अलग था, जिसका उद्देश्य केवल विषय का ज्ञान देना ही नहीं बल्कि राजनीति में दिलचस्पी रखने वाले नेताओं को व्यवहारिक राजनीतिक क्षेत्र में प्रशिक्षण भी प्रदान करना था। इस संबंध में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के जीवनीकार श्री. धनंजय कीर लिखते हैं कि, 'यह विद्यालय उन लोगों के लिए था जो कि विधायिका में काम करने के लिए उत्सुक एवं महत्वाकांक्षी थे और इस प्रकार उन्हें प्रशिक्षित करने वाली यह देश की एकमात्र संस्था थी। इससे स्पष्ट होता है कि, उपरोक्त विद्यालय उन वंचित एवं पिछड़े समूह के लिए किसी बहुत बड़े पायदान के समान था, जो न केवल उन्हें प्रत्यक्ष राजनीति में आने के लिए तैयार करती बल्कि, राजनीति से जुड़े प्रशिक्षण तथा उससे संबंधित कई अन्य प्रकार के कौशल को उनमें विकसित करने का भी काम करती।

यद्यपि, इस विद्यालय का दुखद इतिहास यह है कि बाबासाहेब द्वारा स्वयं स्थापित यह विद्यालय आरंभ होने के बाद मात्र एक साल के भीतर ही ठप्प पड़ गया। जबकि उनके द्वारा मात्र प्रस्तावित की गई रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (आरपीआई) को उनके जोशीले अनुयायियों ने न केवल स्थापित किया बल्कि, उसे कई टुकड़ो में भी विभाजित कर दिया। डॉ. अम्बेडकर अपने इस विद्यालय के माध्यम से नेतृत्व विकास के आधार पर जिस लोकतांत्रिक शक्ति को मजबूत करना चाहते थे, उस इच्छा को आर.पी.आई के विभिन्न गुटों के नेताओं ने अपनी व्यैक्तिक महत्वाकांक्षाओं के कारण सूली पर चढ़ा दिया। इस प्रकार हमें अम्बेडकर और उनके विचारों के ठेकेदारों के दृष्टिकोण में जो भेद दिखाई देता है, उसे चिन्हित करके इस समस्या को समझ सकते हैं।

जहाँ डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में यह विद्यालय उन्हीं के द्वारा प्रस्तावित रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (आरपीआई) को नेतृत्व प्रदान करने के लिए प्रवेश द्वार के समान था और वह ये भी जानते थे कि जो कार्यकर्ता आर. पी.आई. में कार्य करेंगे वह व्यवहारिक राजनीति को उपरोक्त विद्यालय में प्रशिक्षण लिए बगैर कभी समझ नहीं पायेंगे। वहीं बिना डॉ. अम्बेडकर के राजनीतिक दर्शन को जाने अतिउत्साही राजनीतिज्ञों ने (इनको शायद नेता कहना उचित नहीं होगा) या तो अम्बेडकर के द्वारा स्थापित इस राजनीतिक प्रवेश

प्रशिक्षण विद्यालय को नजरअंदाज कर दिया है या इसकी उपयोगिता को पूरी तरह से नकार दिया है।

डॉ. अम्बेडकर ने जिस संस्था के माध्यम से पिछड़ों की राजनीतिक पार्टी में सच्चे और जनहित में कार्य करनेवाले प्रतिनिधि तथा नेताओं की आपूर्ति करने के लिए प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना की थी, उसके मूल्य आज भी तथाकथित अम्बेडकरवादी राजनीतिक पार्टियों में कहीं भी दिखायी नहीं देते। यही बात अकादमिक क्षेत्र में भी लागू होती है, वहां भी डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्थापित इस राजनीतिक विद्यालय की कल्पना पूर्णतया नदारद है।

इसलिए डॉ. अम्बेडकर के महापरिनिर्वाण के बीते लगभग साठ सालों से जिस 'राजनीतिक प्रवेश प्रशिक्षण विद्यालय' के संबंध में गहन खामोशी छाई हुई है, उस पर अम्बेडकर के विचारों को सही रूप में मानने वाले लोगों को गंभीरता से विचार करना चाहिए।

मेरे विचार से इससे संबंधित विचारणीय तीन मुद्दे हो सकते हैं जोकि इस विद्यालय के उद्देश्यों को रेखांकित कर सकते हैं । पहला, अपने जीवन के अंतिम क्षणों में ही क्यों डॉ. अम्बेडकर ने 'राजनीतिक प्रशिक्षण प्रवेश संस्था' स्थापित करने पर बल दिया, जबकि, सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करते ही उन्होंने विभिन्न शैक्षिणिक संस्थाओं को स्थापित किया था? दूसरा, भारत में सच्चे प्रतिनिधित्व को स्थापित करने में राजनीतिक पार्टियों की अपनी जो सीमाएं लोकतांत्रिक परिवर्तन लाने के विरोध में स्थापित हो गई हैं, क्या डॉ. अम्बेडकर ने इसको ध्यान में रखकर इस विद्यालय की स्थापना की? तीसरा, पूना पैक्ट में मिले अनुसूचित जाती/जनजाति समुदाय को मिले राजनीतिक

आरक्षण से उभरे नकली नेतृत्व/प्रतिनिधित्व को ये विद्यालय सच्चे प्रतिनिधि तैयार करके क्या क्षतिपूर्ति होने से बचा सकता था?

आज इस विद्यालय की बुनियाद की 60वीं वर्षगांठ पर अगर हम उपरोक्त प्रकार के सवालों पर विचार-विमर्श करें और विद्यालय को पुनर्जीवित करने का प्रयास करें, तो डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर द्वारा आपेक्षित लोकतंत्र को अधिक मजबूती व् सबल नेतृत्व मिल सकता है। साथ ही युवाओं में पैदा हो रही राजनीतिक उदासीनता को भी ये विद्यालय दूर करने की क्षमता रखेगा। ◆

(लेखक जे.एन.यू. से राजनीति विज्ञान में पीएच.डी हैं।)

शिक्षा, संगठन और संघर्ष के संगम

डॉ. भीमराव अम्बेडकर

■ सुनील कुमार

बाबासाहेब भारतीय संस्कृति के आलोक पुरुष व पोषक थे। उनका नाम मन में आते ही सहसा एक सौम्य छवि नेत्रों के सामने आ जाती है। एक महान व्यक्तित्व जो बौद्धिक और सांस्कृतिक भ्रम की शिकार मानवता को सन्मार्ग की ओर ले जाकर गतिशीलता प्रदान करते हैं। शोषितों और पीड़ितों की दर्द भरी मूक भाषा को अमर स्वर प्रदान करने वाले, राष्ट्रीय एकता व साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए जन-जन में अलख जगाने वाले, समाजवाद के कट्टर समर्थक, अहिंसा की प्रतिमूर्ति, बंधुत्व के प्रतिमान, भारत के संविधान के पावन शिल्पी बाबा साहब जैसे महामानव धरती पर जन्म लेने वाले सूरज की तरह हैं।

बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जीवन संघर्ष का प्रतीक है। वे उच्च कोटि के नेता थे। जिन्होंने अपना सारा जीवन समग्र भारत की कल्याण कामना में समर्पित कर दिया। भारत के 80 फीसदी दलित जो सामाजिक व आर्थिक तौर से अभिशप्त थे, उन्हें अभिशाप से मुक्ति दिलाना ही डॉ. अम्बेडकर का जीवन संकल्प था। डॉ. अम्बेडकर का लक्ष्य था- सामाजिक असमानता दूर करके दलितों के मानवाधिकार की प्रतिष्ठा करना। बाबा साहब एक मनीषी, योद्धा, नायक, विद्वान, दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाजसेवी एवं धीर-गम्भीर प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। उनकी अद्वितीय प्रतिभा चमत्कृत कर देने वाली और अनुकरणीय है।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने सयाजीराव गायकवाड से कहा था- ''महाराज! मैं अध्ययन कर पता लगाऊंगा कि, जिस समाज में मेरा जन्म हुआ हैं, उस की ऐसी दुर्दशा क्यों हैं, और उसकी दुर्दशा के कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर करने की कोशिश करूँगा। बचपन से लेकर, जब मैंने यह समझना शुरू किया कि जीवन का अर्थ क्या हैं, मैंने अपने जीवन में हमेशा एक ही सिद्धांत का पालन किया है और वह सिद्धांत हैं- अपने समाज के लोगों की सेवा करना। मैं जहाँ कही भी और जिस हैसियत में भी रहा हूँ मैं हमेशा अपने भाइयों की बेहतरी के लिए विचार और कर्म करता रहता हूँ। मैंने इतना अधिक ध्यान किसी और समस्या पर नहीं दिया हैं। समाज के लोगों के हितों की रक्षा करना ही मेरे जीवन का मकसद रहा है और भविष्य में भी वह जारी रहेगी। मोटी रकम वाले आकर्षक वेतन के साथ मुझे अनेक लुभावने पदों के प्रस्ताव दिए गए परन्तु मैंने उन सभी प्रस्तावों को ठुकरा दिया क्योंकि मेरे जीवन का एक ही उदेश्य है और वह उदेश्य है अपने समाज के लोगों की सेवा करना।''

आगे बाबा साहब ने कहा था– मैं अपने विद्यार्थियों से एक बात पूछना चाहता हूँ आप लोग डिग्री लेकर नौकरी पाने के बाद अपने समाज के लिए क्या करेंगे? आप लोगों को अपने घर-संसार में ही मग्न न होकर, अपने समाज की सेवा की ओर भी ध्यान देना चाहिए। अपने समाज के लिए अपने वेतन से यथाशक्ति अधिकाधिक धन देना चाहिए। नवयुवकों तथा विद्यार्थियों से मेरा अनुरोध हैं कि वे अपने समुदाय की सेवा का भाव अपने मन में जगायें, समुदाय की बेहतरी का भावी भार उन्हीं के कन्धों पर होगा और वे किसी भी जगह और किसी भी हैसियत में क्यों न रहें, उन्हें इस बात को किसी भी हालत में हरगिज नहीं भूलना चाहिए।

हमारे देश को आजादी मिल गई यह तभी मानना चाहिए जब ग्रामीण लोग, जाति और अन्धविश्वास से छुटकारा पा लेंगे। मैं व्यक्तिगत तौर पर किसी से प्रेम नहीं करता, प्रेम केवल उनके कार्य से ही करता हूँ। जो निस्वार्थ भाव से कार्य करता है वही मुझे अच्छा लगता है। अच्छे काम करने के लिए कठिन परिश्रम करने की आवश्यकता होती है। हर तरक्की की कीमत अदा करनी पड़ती है और जो लोग इसके लिए त्याग करते हैं, उन्हें तरक्की के लाभ मिलते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने कहा– युवाओं को मेरा पैगाम है कि एक तो वे शिक्षा और बुद्धि में किसी से कम न रहें। दूसरे, ऐशो-आराम में न पड़कर समाज का नेतृत्व करें। तीसरे, समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी संभालें तथा समाज को जागृत और संगठित कर उसकी सच्ची सेवा करें। एक आत्म-सम्मानी व्यक्ति, तर्क की कसौटी पर यह निश्चित करता है कि अमुक बात अच्छी है या बुरी। तर्क बुद्धि ही उसे सच खोजने में सहायता करती है।

शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार नई दिशा व प्रेरणा देते हैं– जैसे शिक्षा शेरनी के दूध के समान है, जिसे पीकर हर व्यक्ति दहाड़ने लगता है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसे प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचानी चाहिए। शिक्षा सस्ती से सस्ती हो जिससे निर्धन व्यक्ति भी शिक्षा प्राप्त कर सके। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। शिक्षा के मार्ग सभी के लिए खुले होने चाहिए। किसी समाज की प्रगति उस समाज के बुद्धिमान, कर्मठ और उत्साही युवाओं पर निर्भर करती है। मैंने जिस प्रकार से शिक्षा प्राप्त की, आप भी प्राप्त कीजिए। केवल परीक्षा पास करने तथा पद प्राप्त करने से शिक्षा का क्या उपयोग? आपको यह याद रखना चाहिए कि कोई समाज जागृत, सुशिक्षित और स्वाभिमानी होगा तभी उसका विकास होगा। अपने गरीब और अज्ञानी भाईयों की सेवा करना प्रत्येक शिक्षित नागरिक का प्रथम कर्तव्य है। बड़े अधिकार के पद पाते ही शिक्षित भाई अपने अशिक्षित भाईयों को भूल जाते हैं। यदि उन्होंने अपने असंख्य भाईयों की ओर ध्यान नहीं दिया तो समाज का पतन निश्चित है। अपने बच्चों को विद्यालय जरुर भेजें। उन्हें शिक्षित बनाओ। शिक्षा के बिना समाज को सुधारने का और कोई चारा नहीं।

बाबा साहब का मानना था कि यदि समाज को एक वृक्ष मान लिया जाये तो अर्थनीति उसकी जड़ है, राजनीति आधार, विज्ञान आदि उसके फूल हैं। इसलिए नये समाज की अर्थनीति या राजनीति पर दृष्टिपात करने से पूर्व उसकी संस्कृति की ओर सबसे अधिक ध्यान देना होगा, क्योंकि मूल और तने की सार्थकता तो उसके फूल में है। इसी श्रृंखला में उन्होंने बहिष्कृत हितकारी सभा का गठन कर तेरह शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। उन्होंने समाज की नींव नारी को पुरुष के समान सशक्त बनाने का बीड़ा भी उठाया। नागपुर के दलित महिला सम्मेलन में बोलते हुए बाबा साहब ने कहा था कि वे किसी भी वर्ग की उन्नति का अनुमान इस बात से लगा सकते हैं कि उस वर्ग की महिलाओं ने कितनी उन्नति की है।

डा. अम्बेडकर ने अहिंसा के माध्यम से हिंसा का दमन किया। वे अपनी व्यापक अहिंसा की दृष्टि से ही लोकतंत्र व समाजवाद के समर्थक थे। उन्होंने पूंजीवाद और जमींदारी प्रथा का विरोध अपनी अहिंसक नीति के अनुसार ही किया। पूंजीपतियों और जमींदारों द्वारा मजदूरों और किसानों के शोषण को वे हिंसा का पर्याय मानते थे। मानव कल्याण के विरुद्ध किए गए प्रत्येक कार्य को वे हिंसा की श्रेणी में रखते थे। उन्होंने नवभारत के निर्माण के लिये सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक आदि प्रत्येक क्षेत्र का गहन अध्ययन किया और पूर्व तथा पश्चिम के श्रेष्ठ तत्वों को समन्वित करके संविधान के रूप में जीवन शैली तैयार की। उन्होंने मानव जीवन को अमूल्यनिधि इस मंत्र के रूप में प्रदान की – शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो। हिन्दी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर उन्होंने सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोने का सफल प्रयास किया।

आज हर क्षेत्र में नई चेतना के साथ-साथ परिवर्तन की लहर भी दिखाई दे रही है, लेकिन आज बाबा साहब के विचारों और संदेशों को जीवन में उतारने की आवश्यकता है। अब समय आ गया है असत्य से लड़ने, विद्रूप हिंसा की बाढ़ रोकने तथा मानवता विरोधी शक्तियों का डटकर मुकाबला करने का और कहना न होगा कि बाबा साहब की सीख हमें सफलता का सीधा रास्ता बता सकती है। ◆

(लेखक शासकीय दिग्विजय पी.जी. स्वायत्तशासी कॉलेज, राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ के प्रोफेसर हैं।)

शिक्षा का अधिकार और नवउदारवादी हमला

सरकारी स्कूल बदहाल कैसे हो गए

“ विश्व बैंक और बाजार की अन्य ताकतें विभिन्न सहचर गैर-सरकारी एजेंसियों के जरिए तथाकथित शोध-अध्ययन आयोजित करके ऐसे आंकड़े पैदा करवा रही हैं कि किसी तरह सिद्ध हो जाये (यानी भ्रम फैल जाए) कि सरकारी स्कूल एकदम बेकार हो चुके हैं और इनको बंद करना ही देश के हित में होगा। कोई रपट यह नहीं बताती कि ये बदहाल कैसे हुए और इस प्रक्रिया में देश के शासक वर्ग एवं बाजार की ताकतों की क्या भूमिका रही है। ”

शिक्षा का अधिकार गहरे अर्थों में एक मूल अधिकार है। यह आलेख शिक्षा के अधिकार के खिलाफ खड़ी व्यवस्था की जांच-पड़ताल करता है। शिक्षा से जुड़े सवालों को राजनीति के केंद्र में लाने की जरूरत पर बल देता है। इस आलेख में उठाए गए मुद्दे राजनीतिक चर्चा और पहल-कदमी की मांग करते हैं और एक सचेत नागरिक को अपनी भूमिका तय करने में मदद करते हैं।

सवा सौ साल पहले महात्मा ज्योतिबा फुले ने ब्रिटिश राज द्वारा गठित भारतीय शिक्षा आयोग (1882) को प्रस्तुत अपने ज्ञापन में एक विडंबना का जिक्र करते हुए कहा था कि सरकार का अधिकांश राजस्व तो मेहनतकश किसान-मजदूरों से आता है, लेकिन इसके द्वारा दी जाने वाली शिक्षा का प्रमुख लाभ उच्च वर्ग और उच्च वर्ण उठा लेता है। महात्मा फुले की यह टिप्पणी भारत की आज की शिक्षा पर भी सटीक बैठेगी। सन् 1911 में इम्पीरियल असेम्बली में गोपाल कृष्ण गोखले ने मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का विधेयक पेश किया। लेकिन यह विधेयक सामंती और नव-धनाढ्य ताकतों के विरोध के कारण पारित न हो सका। विरोध का एक आधार संसाधनों की कमी बताया गया। सन् 1937 में वर्धा (महाराष्ट्र) में आयोजित अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन में महात्मा गांधी ने नव-निर्वाचित सात प्रांतीय सरकारों के शिक्षा मंत्रियों को चुनौती देते हुए कहा कि उनकी पहली प्राथमिकता है कि वे सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देना सुनिश्चित करें और वह भी उत्पादक काम पर आधारित शिक्षा। लेकिन सभी मंत्रियों ने गांधीजी को कहा कि देश के पास इसके लिए संसाधन नहीं हैं। जब संविधान लिखा जा रहा था तब संविधान सभा के एक सदस्य ने प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर से अनुरोध किया कि प्रस्तावित अनुच्छेद 45 में 14 साल की उम्र तक के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के वायदे को घटाकर 11 साल तक का कर देना चाहिए, क्योंकि भारत एक गरीब देश है और संसाधनों की कमी है। लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने यह कहकर इस कुतर्क को नहीं माना कि आजाद भारत में इस उम्र के बच्चों के लिए सही जगह स्कूल होनी चाहिए, न कि खेत-खलिहान व

कारखाने। लेकिन यह सिलसिला आज भी जारी है। जून 2006 में तत्कालीन भारत सरकार ने संसाधनों की कमी का दावा करते हुए 86वें संविधान संशोधन के अनुच्छेद 21(क) के तहत प्रस्तावित शिक्षा के अधिकार विधेयक को संसद में पेश करने से इंकार कर दिया और विधेयक का एक बेहद कमजोर प्रारूप राज्य सरकारों को भेजकर अपनी संवैधानिक जवाबदेही से पल्ला झाड़ लिया।

संविधान में शिक्षा के मौलिक अधिकार की दृष्टि

डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों के बावजूद शिक्षा को संविधान के मौलिक अधिकार वाले खंड तीन में नहीं रखा जा सका। हालांकि 14 साल की उम्र तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का वायदा देने वाला अनुच्छेद 45 संविधान के राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के खंड चार में रखा गया, लेकिन शिक्षा के बारे में संवैधानिक दृष्टि के चार महत्वपूर्ण बिंदुओं पर गौर करना जरूरी है। पहला, खंड चार में यह एकमात्र अनुच्छेद है, जिसकी पूर्ति के लिए समय-सीमा रखी गई थी - संविधान लागू होने के दस साल के भीतर इस संकल्प को पूरा करना था, यह आज तक नहीं हुआ है। दूसरा, 14 साल की उम्र तक में छह वर्ष से कम उम्र के भी बच्चे शामिल थे यानी जन्म से लेकर 6 वर्ष तक के बच्चों के पोषण, स्वास्थ्य और पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को राज्य की जवाबदेही में शामिल किया गया था। तीसरा, संविधान ने आठ वर्ष की प्रारंभिक शिक्षा का एजेंडा राज्य के सामने रखा था, न कि महज पांच साल की प्राथमिक शिक्षा का। चौथा, इस अनुच्छेद को अनुच्छेद 46 के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें संविधान ने दलित और आदिवासी बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के लिए राज्य को निर्देशित किया था।

शिक्षा के अधिकार के विमर्श में नया मोड़ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सन् 1993 में दिए गए उन्नीकृष्णन फैसले से आया। इस फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 45 को खंड तीन के जीवन के हक वाले अनुच्छेद 21 के साथ जोड़कर पढ़ने की जरूरत है क्योंकि ज्ञान देने वाली शिक्षा के बगैर इंसान का जीवन निरर्थक है। इस तरह सर्वोच्च न्यायालय ने 1993 में 14 साल की उम्र तक के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया।

मौलिक अधिकार और शासक वर्ग का नजरिया

सर्वोच्च न्यायालय के उक्त ऐतिहासिक फैसले के बाद भारत का शासक वर्ग लगातार इस कोशिश में लगा रहा कि किस प्रकार उन्नीकृष्णन फैसले के असर को घटाया या विकृत किया जाए। भारत सरकार की सैकिया समिति रपट (1997) और 83वां संविधान संशोधन विधेयक (1997) व उस पर मंत्रालय की संसदीय समिति की रपट इस बात के गवाह हैं कि केंद्रीय सरकार ने शिक्षा के मौलिक अधिकार के मायने को ही घटाने और विकृत करने एवं शिक्षा में बाजार की ताकतों को जगह देने के उद्देश्य से क्या-क्या चतुर उपाय किए। लेकिन सरकार के इस नजरिए की सार्वजनिक तौर पर तीखी आलोचना हुई और संसदीय समिति को भी शिक्षाविदों व जन संगठनों ने ज्ञापन पेश किए। अत: अगले चार साल के लिए शिक्षा के अधिकार का मसला ठंडे बस्ते में डाल दिया गया।

लेकिन अचरज तो यह है कि सभी राजनैतिक दल चुप्पी साधे रहे। नवंबर 2001 में 86वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में पेश हुआ। संसद के अंदर और बाहर इस विधेयक के जन-विरोधी चरित्र पर व्यापक बहस हुई - जन सभाएं हुई व रैलियां निकलीं। स्पष्ट था कि इसको पेश करने का परोक्ष उद्देश्य शिक्षा का हक देना नहीं, वरन् सर्वोच्च न्यायालय के उन्नीकृष्णन फैसले से मिले हक को छीनना था। जो अधिकार उन्नीकृष्णन फैसले से जनता को मिल चुके थे वे भी 86वें संशोधन के चलते छिन गये। इसके बावजूद अंतत: सार्वजनिक आलोचना को नजरअंदाज करते हुए सभी राजनैतिक दलों में आपसी सहमति बन गई और यह विधेयक संसद के दोनों सदनों में सर्वसम्मति से पारित हो गया। दिसंबर 2002 में विधेयक पर राष्ट्रपति के दस्तखत हो गए और यह संशोधन संविधान का अंग बन गया। इस संशोधन के जरिए खंड तीन में अनुच्छेद 21(क) जोड़ा गया जिसके तहत 6-14

सरकारी स्कूलों की विश्वसनीयता तेजी से गिरी और हर प्रकार के दुकाननुमा निजी स्कूल कुकुरमुत्तों की तरह उगे, जिनमें बड़ी तादाद में मान्यता-विहीन स्कूल शामिल हैं। सरकारी स्कूल प्रणाली से 1970 के दशक से उच्च एवं मध्यम वर्गों ने जो महापलायन शुरु किया उस प्रक्रिया में अंग्रेजी माध्यम के बढ़ते हुए प्रभुत्व को रेखांकित करने की जरूरत है।

आयु समूह के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार दिया तो गया, लेकिन एक शर्त के साथ। पूरे खंड तीन में यह मौलिक अधिकार अकेला ऐसा मौलिक अधिकार है जो सशर्त दिया गया है। बाकि सभी मौलिक अधिकार बगैर किसी शर्त के दिए गए हैं। शर्त यह है कि शिक्षा का मौलिक अधिकार 'उस रीति से दिया गया जो राज्य कानूनन निर्धारित करेगा।' ऐसी शर्त क्यों लगाई गई, यह समझने के लिए हमें वैश्वीकरण के चलते भारत की शिक्षा नीति और व्यवस्था में जो भारी परिवर्तन हुए हैं उनको जानना होगा।

शिक्षा पर वैश्वीकरण का हमला

भारत में वैश्वीकरण की शुरुआत की औपचारिक घोषणा तो 1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा के साथ हुई। लेकिन इसके एजेंडे का सूत्रपात 1980 के दशक के मध्य में ही हो चुका था। इसका सबूत संसद द्वारा पारित हमारी 1986 की शिक्षा नीति में मौजूद परस्पर विरोधाभासी बयानों में देखा जा सकता है। एक ओर तो नीति में कहा गया कि कोठारी शिक्षा आयोग (1964-99) द्वारा सुझायी गई 'पड़ोसी स्कूल' की अवधारणा पर आधारित 'समान स्कूल प्रणाली' की ओर बढ़ने के लिए कारगर कदम उठाए जाएंगे। लेकिन दूसरी ओर इस अवधारणा के ठीक विरुद्ध एजेंडा बनाया गया। आजाद भारत में शिक्षा नीति का यह पहला दस्तावेज है जिसने घोषित किया कि आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा सभी बच्चों को स्कूल के जरिए नहीं दी जा सकेगी। संबंधित आयु समूह (यानी 6-14 आयु समूह) के कम-से-कम आधे बच्चे ऐसे होंगे जिन्हें स्कूल उपलब्ध नहीं कराया जायेगा बल्कि उन्हें औपचारिक स्कूल के समानांतर घटिया गुणवत्ता वाली औपचारिकेतर (नॉन-फॉर्मल) धारा के जरिए शिक्षित किया जायेगा। इस समानांतर धारा में नियमित शिक्षक नहीं पढ़ायेंगे - उनकी जगह बगैर अर्हता वाले ठेके पर रखे गये निर्देशक या शिक्षाकर्मी नियुक्त किए जायेंगे।

इस तरह सरकारी स्कूल के नीचे देश के आधे बच्चों के लिए घटिया शिक्षा की एक परत बिछाने का नीतिगत फैसला हुआ। इसी नीति में सरकारी स्कूल के ऊपर ग्रामीण क्षेत्र के मुट्ठी भर अपेक्षाकृत सम्पन्न तबके के बच्चों के लिए नवोदय विद्यालयों की एक और परत बिछाने की घोषणा हुई। 1986 की शिक्षा नीति ने 'समान स्कूल-प्रणाली' की जगह 'बहु-परती शिक्षा व्यवस्था' स्थापित करने की वैधानिक घोषणा कर दी जिसने 1990 के दशक में वैश्विक बाजार की ताकतों को शिक्षा के निजीकरण व बाजारीकरण की जमीन दी। सन् 1991 में घोषित नई आर्थिक नीति के बाद वैश्विक बाजार का प्रतिनिधित्व करने वाली दो ताकतवर संस्थाओं - अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक - ने भारत सरकार के सामने कर्ज और अनुदान पाने के लिए अपनी शर्तें रखीं। शर्तों के पैकेज का नाम रखा गया- 'संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम' (स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट प्रोग्राम) । इसके तहत सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह देश के शिक्षा और स्वास्थ्य समेत सभी समाज विकास और कल्याण कार्यक्रमों पर खर्च घटाए। सरकार ने ये शर्तें स्वीकारीं।

उल्लेखनीय है कि कोठारी शिक्षा आयोग ने कहा था कि पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक उम्दा गुणवत्ता की शिक्षा देने के लिए जरूरी है कि देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का कम-से-कम 6 प्रतिशत हर वर्ष खर्च किया जाए। इसके बावजूद 1991 की आर्थिक नीति के चलते अगले 15 सालों में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में शिक्षा पर किए जाने वाला खर्च लगातार घटाया गया। 2005-06 में यह खर्च घटते-घटते बीस वर्ष पूर्व के स्तर पर आ गया यानी सकल राष्ट्रीय उत्पाद का महज 3.5 प्रतिशत। यह इसके बावजूद हुआ है कि सर्व शिक्षा अभियान का लगभग 40 प्रतिशत बजट विश्व बैंक व अन्य अंतरराष्ट्रीय वित्तपोषक संस्थाओं से आता है। स्पष्ट है कि जनता के सभी तबकों को समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए शासक वर्ग की राजनैतिक इच्छाशक्ति विगत 25 वर्षों से लगातार घटती गई है। ऐसा करने में वैश्विक बाजार की ताकतों का छिपा हुआ एजेंडा भारत की विशाल सरकारी स्कूल प्रणाली (आज लगभग 11.2 लाख स्कूल हैं) को ध्वस्त करना था, ताकि उसकी जगह फीस लेने वाले निजी स्कूल ले सकें। इसी एजेंडे का दूसरा पहलू सरकार को शिक्षा के प्रति अपनी संवैधानिक जवाबदेही से बरी होने का मौका भी देना था। लेकिन इतनी बड़ी और स्थापित व्यवस्था को खत्म करना आसान न था। अत: विश्व बैंक ने 1993-94 से सरकारी खर्च में

कटौती के फलस्वरूप हुई क्षति की आंशिक पूर्ति के नाम पर शिक्षा के लिए कर्ज व अनुदान का कार्यक्रम शुरु किया जिसको जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) के नाम से जाना जाता है। जहां पूरे भारत में केंद्रीय और राज्य सरकारें मिलकर आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा पर लगभग 40,000 करोड़ सालाना खर्च कर रही थीं वहीं विश्व बैंक ने स्वयं द्वारा प्रायोजित डी.पी. ई. पी. में मात्रा रु. 500-1,000 करोड़ सालाना खर्च करके स्कूली शिक्षा नीति पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। विश्व बैंक और इसकी सहचर अंतर्राष्ट्रीय वित्तपोषक संस्थाओं की इस घुसपैठ के फलस्वरूप अगले 20-25 सालों में भारत की पूरी स्कूल व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई।

वैश्विक बाजार की इस रणनीति के निम्नलिखित तत्व पहचाने जा सकते हैं- 1. शिक्षा के समग्र सामाजिक विकास के उद्देश्यों की जगह महज साक्षरता-संबंधी कौशलों ने ले ली। 2. 'समान स्कूल-प्रणाली' की जगह 'बहु-परती शिक्षा व्यवस्था' स्थापित हुई - हरेक तबके के लिए एक अलग गुणवत्ता की शैक्षिक परत बिछाने का नया समाजशास्त्रीय सिद्धांत गढ़ा गया। 3. नियमित शिक्षक की जगह अर्हता-विहीन, प्रशिक्षण-विहीन और कम वेतन पाने वाले ठेके पर नियुक्त पैरा-शिक्षक ने ली। इस नए कैडर को विभिन्न राज्यों में नाना प्रकार के लुभावने नाम देकर घटिया शिक्षा की हकीकत छिपाने की कोशिश की गई। 4. 1986 की शिक्षा नीति में संसद द्वारा निर्देशित न्यूनतम तीन कक्षा भवन और तीन शिक्षकों वाले स्कूलों की जगह बहु-कक्षायी अध्यापन जैसी 'चमत्कारिक' अवधारणा के तहत शिक्षकों को अकेले एक साथ पांच कक्षाओं को पढ़ाने का प्रशिक्षण दिया गया, जिस पर सैकड़ों करोड़ रुपये का खर्च किया गया जो कर्ज के रूप में देश की अगली पीढ़ी चुकायेगी। 5. आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा के संवैधानिक एजेंडे की जगह पांच साल की प्राथमिक शिक्षा ने ली। 6. पाठ्यचर्या को ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से काटकर बाजार के संदर्भ से जोड़ा गया (संदर्भ - मिनिमम लेवल लर्निंग की अवधारणा, भारत सरकार, 1991)। 7. शिक्षण पद्धति का निर्धारण शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों पर न होकर बढ़ते क्रम में सूचना प्रौद्योगिकी एवं उसका व्यापार करने वाली कंपनियों की तर्ज पर होने लगा। 8. शिक्षा प्रणाली में प्रणालीगत परिवर्तन करके उसका देश की जरूरतों के अनुरूप पुनर्निर्माण करने का उद्देश्य हाशिए पर धकेल दिया गया। इसकी जगह तदर्थ व अल्पकालीन स्कीमों और परियोजनाओं ने ले ली जिन्हें बगैर जांचे-परखे शुरु करने और बिना वैज्ञानिक आकलन के मनचाहे ढंग से बंद करने की खुली छूट मिल गई (उदाहरण - डी.पी.ई.पी. एवं सर्व शिक्षा अभियान)। 9. राज्य की संवैधानिक जवाब देही की जगह बाजार की ताकतों ने ले ली। 10. सरकार और पंचायती राज संस्थानों जैसे संवैधानिक निकायों की जगह शिक्षा की जिम्मेदारी तेजी के साथ गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) एवं धर्मिक-सांप्रदायिक संगठनों को सौंपने का खतरनाक सिलसिला शुरु हुआ। 11. शिक्षा नीति के निर्णय हमारी संसद और विधान सभाओं में न होकर देशी व अंतर्राष्ट्रीय बाजार और विश्व बैंक के मुख्यालय में होने लगे। 12. शिक्षा के अधिकार वाली सोच की जगह बाजार में शिक्षा की कीमत और बच्चे के परिवार की आर्थिक हैसियत वाली सोच स्थापित हुई।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि शिक्षा का विकास संवैधानिक एवं लोक कल्याणकारी परिप्रेक्ष्य में न करने का उच्च-स्तरीय राजनैतिक निर्णय लिया जा चुका है। शिक्षा बाजार में खरीद-फरोख्त की वस्तु बन चुकी है और इसे विश्व व्यापार संगठन के पटल पर रखने का फैसला बगैर किसी लोकतांत्रिक बहस के चुपचाप लिया जा चुका है। शिक्षा नीति की जगह अंतर्राष्ट्रीय वित्त पर आधारित स्कीमों व परियोजनाओं (बहु-चर्चित 'सर्वशिक्षा अभियान' समेत) ने ले ली है जिनके तहत स्कूली शिक्षा के समानांतर निम्न गुणवत्ता वाली कई शैक्षिक परतें बिछाई जा चुकी हैं। शर्त केवल एक है - यह वैकल्पिक व्यवस्था केवल गरीब जनता के लिए खड़ी की जाएगी यानी दो-तिहाई जनता के लिए, इसमें प्रमुखतः दलित, आदिवासी, अति-पिछड़े, अल्पसंख्यक और विकलांग शामिल हैं और इन समुदायों में भी विशेषकर लड़कियां। इस प्रकार संविधान के समानता एवं सामाजिक न्याय के सिद्धांत का खुलकर उल्लंघन हुआ है। इस नई वैश्वीकृत बहु-परती शिक्षा नीति का छिपा हुआ एजेंडा देश की विशाल सरकारी स्कूल प्रणाली की गुणवत्ता गिराकर उसको इतना जर्जर बना देना था कि गरीब लोग भी अपने बच्चों को वहां से निकाल लें और निजी स्कूलों की तलाश करने लगें। इसमें विश्व बैंक और उनकी अनुयायी हजारों गैर-सरकारी संस्थाओं को अपेक्षित सफलता मिली है। सरकारी स्कूलों की विश्वसनीयता तेजी से गिरी और हर प्रकार के दुकाननुमा निजी स्कूल कुकुरमुत्तों की तरह पैदा हुए, जिनमें बड़ी तादाद में मान्यता-विहीन स्कूल शामिल हैं। सरकारी स्कूल प्रणाली से 1970 के दशक से उच्च एवं मध्यम वर्गो ने जो महापलायन शुरु किया उस प्रक्रिया में अंग्रेजी माध्यम के बढ़ते हुए प्रभुत्व को रेखांकित करने की जरूरत है। इसके चलते सरकारी स्कूल प्रणाली की गुणवत्ता बरकरार रखने के लिए आवश्यक राजनैतिक व सामाजिक रूप

प्रारंभिक शिक्षा देना राज्य की संवैधानिक जवाबदेही है जिससे बरी होने के इरादे से सरकार संसाधनों की कमी का बहाना नहीं कर सकती। संसाधनों के आबंटन में प्रारंभिक शिक्षा की तुलना में ऐसी किसी भी अन्य मद को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती, जो मौलिक अधिकार न हो। इसका निहितार्थ है कि यदि संसाधन की कमी है तो राज्य की जवाबदेही है कि वह कॉर्पोरेट घरानों द्वारा लिए गए बैंक कर्जों की माफी एवं विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) के लिए सब्सिडी आदि पर रोक लगाकर प्रारंभिक शिक्षा के लिए निवेश करे चूंकि उपरोक्त में से कोई भी खर्च कार्पोरेट भारत के मौलिक अधिकार के लिए नहीं है।

से प्रभावी आवाज भी लुप्त हो गई। आज पूर्व-प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च व प्रोफेशनल स्तर तक की शिक्षा का बाजारीकरण करना सरकारी नीति बन चुकी है। नीति निर्माण की लगाम संसद और विधान सभाओं से खींचकर वैश्विक बाजार की ताकतों यानी विश्व बैंक की अगुवाई में सक्रिय अंतर्राष्ट्रीय वित्तपोषक संस्थाओं और देशी-विदेशी घरानों को सौंपी जा रही है। इसके साथ-साथ शिक्षा के जरिए वर्ग-भेद, जाति-भेद, धर्मिक कट्टरवाद, नस्लवाद, पितृसत्ता, सामंती व गैर-तार्किक सोच, पिछड़ेपन आदि विकृतियों के खिलाफ लड़ाई आगे बढ़ाने के सरोकार गौण हो रहे हैं। शिक्षा, वैश्विक बाजार की ताकतों के हाथ में वर्चस्ववाद, शोषण, सांप्रदायिकता व विषमता फैलाने का हथियार बनती जा रही है। दरअसल, वैश्वीकरण के शिक्षा पर हुए आक्रमण को मात्र निजीकरण व बाजारीकरण मान लेना अति-सरलीकरण होगा। पूरी सच्चाई तो यह है कि वैश्वीकरण का आक्रमण शिक्षा में निहित ज्ञान के चरित्र पर है ताकि ज्ञान के सृजन, संप्रेषण और वितरण पर बाजार की ताकतों का नियंत्रण हो सके। तभी तो जनमानस को बाजार के हित में मोड़ा जा सकेगा।

आज की हकीकत

आज 6-14 वर्ष आयु समूह के आधे से अधिक बच्चे (दो-तिहाई लड़कियां) संविधान में निर्देशित आठ वर्ष की प्रारंभिक शिक्षा से वंचित हैं। पांचवीं कक्षा तक अधिकांश बच्चे एक भी सही वाक्य नहीं लिख पाते हैं (न अपनी भाषा में, न किसी अन्य में) और दो अंकों का गुणा-भाग तक नहीं कर पाते हैं। कुल मिलाकर एक-तिहाई बच्चे ही हाई स्कूल तक पढ़ पाते हैं (दलित, आदिवासी और अल्प-संख्यक समुदायों में यह आंकड़ा बमुश्किल 25-30 प्रतिशत है, मात्र 20 प्रतिशत आदिवासी लड़कियां दसवीं तक पहुंच पाती हैं और पास तो आधी ही होती होंगी)। इन्हीं समुदायों में 12वीं पास करने वाले बच्चों का प्रतिशत 5-6 प्रतिशत से अधिक नहीं है। उच्च शिक्षा, संबंधित आयु समूह (18-23 वर्ष) के मात्र 9 प्रतिशत को ही उपलब्ध है, जबकि चीन में यह आंकड़ा 16 प्रतिशत है। एक विकसित राष्ट्र बनने के लिए यह आंकड़ा कम-से-कम 20 प्रतिशत होना चाहिए और चीन जल्द ही इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। गिने-चुने उच्च शिक्षा संस्थानों को छोड़कर अधिकांश संस्थानों की गुणवत्ता, निजी संस्थानों समेत पिछले 15-20 वर्षों में गिरती गई है।

एक और हकीकत

जी-8 (अमरीका, कनाडा, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, जापान आदि) के उच्च-विकसित देशों में अकूत संपदा व ताकत के अलावा एक और साझी बात है - उन सभी देशों में सार्वजनिक धन पर सुचारु रूप से चलने वाली सबको उपलब्ध पड़ोसी 'समान स्कूल व्यवस्था' है जिसके बगैर वे मुल्क वहां नहीं पहुंच पाते जहां वे आज पहुंच पाए हैं। यही बात स्कैंडेनेवियाई मुल्कों पर भी लागू होती है और अन्य कई मुल्कों पर भी। निजी स्कूल खोलना और इस स्तर पर फीस और कैपीटेशन चार्ज लेना पिछड़े मुल्कों की पहचान है। यह भारतीय 'राज्य' द्वारा अपनी संवैधानिक जवाबदेहियों से पल्ला झाड़ने की नीति का सबूत है। दरअसल, शिक्षा को मुनाफे का जरिया मान लेने से ही तमाम विकृतियों के दरवाजे खुल जाते हैं। अधिकांश विकसित देशों में उच्च शिक्षा को भी सरकार धन मुहैया कराती है और उनका नियंत्रण भी करती है। सार्वजनिक धन पर चलने वाली उच्च शिक्षा संस्थाओं में अमरीका में 76 प्रतिशत, फ्रांस में 88 प्रतिशत, रूस में 89 प्रतिशत, कनाडा में 100 प्रतिशत और जर्मनी में 100 प्रतिशत विद्यार्थी पढ़ते हैं। इन विकसित मुल्कों की सरकारें ज्ञान सृजन, संप्रेषण व वितरण में बाजार की भूमिका पर अपने-अपने राष्ट्र हित में सचेत नियंत्रण रखती हैं। लेकिन वे ही ताकतें भारत जैसे प्रगतिशील देशों को बाजार की वर्ग-भेद पर आधारित 'च्वाइस' यानी 'चयन के हक' का भ्रामक पाठ पढ़ाती हैं। इस तथाकथित चयन के हक का भ्रम फैलाकर देश का शासक वर्ग दो-तिहाई जनता को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित रखने के इरादे से हर स्तर पर शिक्षा को वैश्विक बाजार में खरीद-फरोख्त की वस्तु बनाने के कदम उठा चुका है। यह रणनीति ज्ञान व्यवस्था पर उच्च वर्ग और उच्च वर्ण के वर्चस्व को बरकरार रखने की रणनीति है।

'समान स्कूल-प्रणाली'

कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) ने पड़ोसी स्कूल की अवधारणा पर

आधारित 'समान-स्कूल प्रणाली' की अनुशंसा करते हुए कहा था कि इसके बगैर एक समतामूलक व समरस समाज का निर्माण नहीं हो सकता है। यदि ऐसा नहीं हो सका तो विषमता और आपसी दूरियां बढ़ती जाएंगी। इसका नकारात्मक प्रभाव न केवल गरीबों पर वरन् संपन्न तबकों पर भी पड़ेगा चूंकि वे यह जान ही नहीं पाएंगे कि देश की दो-तिहाई जनता की हकीकत क्या है और उनके सरोकार क्या हैं। इससे इन तबकों की भी शिक्षा अधकचरी व अपूर्ण रह जाएगी। आयोग के अनुसार 'समान स्कूल-प्रणाली' के आधार पर ही एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का निर्माण हो सकेगा जहां सभी वर्गों व तबकों के लोग इकट्ठे पढ़ सकेंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो आयोग ने चेतावनी दी कि समाज के प्रभावकारी वर्ग सरकारी स्कूल से पलायन करके निजी स्कूलों की ओर बढ़ेंगे और सरकारी स्कूल प्रणाली की गुणवत्ता बरकरार रखने के लिए आवश्यक दबाव खत्म हो जाएगा।

1970 के दशक के मध्य से उच्च वर्गों ने अंग्रेजी के बढ़ते हुए प्रभुत्व को पहचान कर अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की तलाश में निजी स्कूलों की ओर भागना शुरु किया। यदि तत्कालीन सरकार में सही शिक्षा के प्रति राजनैतिक इच्छाशक्ति होती तो कोठारी आयोग द्वारा अनुशंसित त्रि-भाषा सूत्र की तर्ज पर पूरे देश में समान भाषा नीति लागू करती। इसके तहत हर स्कूल में सभी बच्चों को बिना किसी भेदभाव के भारत की बहु-भाषाई पृष्ठभूमि के अनुरूप मातृभाषा से शुरु करके राज्यविशेष की भाषा को माध्यम बनाते हुए उम्दा गुणवत्ता की अंग्रेजी सिखाने की सुविधा दी जाती। लेकिन ऐसा करने से उच्च वर्गों और वर्णों का वर्चस्व खत्म हो जाता। अतः समान स्कूल प्रणाली के लिए आवश्यक समान भाषा नीति नहीं अपनाई गई। जो हुआ वह अपेक्षित था। उस काल के तमाम उम्दा गुणवत्ता वाले सरकारी स्कूलों में - जहां आज की बुजुर्ग और अधेड़ पीढ़ी के विद्वानों, शिक्षक, नौकरशाह और अन्य पेशेवरों ने गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पाई है - तेजी से गिरावट आनी शुरु हुई है। जैसा कि उपर विवरण दिया है कि वैश्वीकरण के बाद गुणवत्ता को गिराना एक सचेत नीति का हिस्सा बन गया।

आज इस बहु-परती सरकारी शिक्षा प्रणाली की विश्वसनीयता इस कदर गिर चुकी है कि इसमें केंद्रीय व नवोदय विद्यालयों को छोड़कर, केवल उस तबके के बच्चे पढ़ते हैं जिनकी हैसियत कम फीस व घटिया सुविधाओं वाले मान्यता-विहीन दुकाननुमा स्कूलों में भी अपने बच्चों को भेजने की नहीं है। इस तरह तीस साल पहले की तुलना में समान स्कूल प्रणाली स्थापित करने का काम आज कहीं अधिक मुश्किल हो चुका है। समान स्कूल प्रणाली के बारे में तीन मनगढ़ंत धारणाएं निजी स्कूल लॉबी द्वारा जानबूझकर फैलाई जाती हैं। पहला, यह कहा जाता है कि यह प्रणाली सारे देश में एकरूपी लोचहीन प्रणाली स्थापित कर देगी। सच तो यह है कि एकरूपता की जकड़न तो वर्तमान प्रणाली की पहचान है जहां बोर्ड व प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओं के चलते विविधता और लोच के खिलाफ एक अघोषित लड़ाई चलती रही है। समान स्कूल प्रणाली तभी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली बन सकेगी, जब इसकी पाठ्यचर्या का आधारभूत सिद्धांत होगा देश में व्याप्त विविधता - हर प्रकार की विविधता - भू-सांस्कृतिक, सामाजिक, भाषाई और नस्ली। शर्त केवल यह होगी कि हरेक स्कूल के पास न्यूनतम ढांचागत, शिक्षक-संबंधी व अन्य शैक्षिक मापदंड बरकरार रखने के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हों, जिसकी पूरी जवाबदेही सरकार की होगी। दूसरा, जमकर दुष्प्रचार किया गया है कि इसमें निजी स्कूलों के लिए जगह नहीं होगी। उलटे, उक्त प्रणाली में निजी स्कूलों के लिए पूरी जगह होगी, लेकिन शिक्षा से मुनाफा कमाने के लिए कतई जगह नहीं होगी। ध्यान केवल यह रखना होगा कि निजी स्कूल संविधान में निहित सिद्धांतों के अनुसार चलेंगे और अनुच्छेद 21(क) के जरिए दिए गए समतामूलक व मुफ्त शिक्षा के अधिकार के तहत पड़ोसी स्कूल की तरह काम करेंगे। तीसरा, निजी स्कूल लॉबी ने यह प्रचार भी किया है कि इस प्रणाली के लागू होते ही हर स्कूल पर सरकार का पूरा नियंत्रण हो जाएगा। हमें समझना होगा कि सरकारी धन या अनुदान का अर्थ प्रबंधकीय या शैक्षिक नियंत्रण कतई नहीं है, हालांकि आज तक यही होता आया है। सरकारी अनुदान के बावजूद हर स्कूल की स्वायत्तता रह सकती है, बशर्ते कि स्कूल संवैधानिक खाके में रहकर काम करें।

73वें और 74वें संविधान संशोधनों ने जन भागीदारी पर आधारित विकेंद्रित व्यवस्था खड़ी करने की पूरी गुंजाइश दी है, लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं हो सकता कि सरकार को नीति बनाने, आवश्यक संसाधन देने एवं निगरानी रखने जैसी अपनी संवैधानिक जवाबदेही से छूट मिल जाएगी। आज बाजार की ताकतें शिक्षा के निजीकरण व बाजारीकरण की रफ्तार तेज करने के इरादे से विकेंद्रीकरण की ऐसी विकृत अवधारणा को फैला रही हैं, जिसके तहत सरकार को उसकी उक्त जवाबदेहियों से बरी करने का रास्ता खुल जाए। हमें बाजार की इस रणनीति के प्रति सचेत रहना होगा। अमरीका व कनाडा जैसे विकसित देशों में सार्वजनिक धन पर आधारित होने के बावजूद वहां की स्कूल व्यवस्था पूरी तरह विकेंद्रित है, जिसके संचालन में आम जन और विशेषकर अभिभावकों की निर्णायक भूमिका है। हम ऐसे मुल्कों से सबक ले सकते हैं।

एक और मुद्दा। बगैर समान स्कूल प्रणाली के पाठ्यचर्या में सुधार की बात करने का मतलब होगा कि विभिन्न परतों के स्कूलों के बीच गुणात्मक गैर-बराबरी बढ़ाना। यानी पाठ्यचर्या में देशव्यापी सुधार तभी संभव होगा, जब सभी स्कूलों में गुणात्मक सुधार के लिए समतामूलक धरातल होगा। इसके लिए समान स्कूल प्रणाली आवश्यक शर्त है। हाल में इसी मुद्दे को लेकर तीखी बहस हुई जब एनसीईआरटी ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 (एन.सी. एफ.-2005) बनाने की कवायद की। एक पक्ष यह मानने को तैयार ही नहीं था कि पाठ्यचर्या में सुधार का समान स्कूल प्रणाली से कोई सार्थक रिश्ता हो सकता है। अंतत: काफी जद्दोजहद के बाद एन.सी. एफ.-2005 में समान स्कूल प्रणाली का जिक्रभर तो हो पाया, लेकिन पाठ्यचर्या सुधार और समान स्कूल प्रणाली के रिश्ते का सिद्धांत स्थापित करवाने के लिए शासक वर्ग पर जनता का दबाव बनाना होगा। यह तय है कि हरेक स्कूल जब सच्चे मायने में पड़ोसी स्कूल बनेगा तभी हर तबके, जाति, मजहब या भाषा के बच्चे एक साथ पढ़ पायेंगे। यह पूर्व शर्त होगी एक लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष एवं समतामूलक भारत के निर्माण के लिए। तभी ऐसे हालात बनेंगे कि भारत की संपूर्ण प्रतिभा का इस्तेमाल सामाजिक विकास के लिए हो पायेगा।

शिक्षा अधिकार और समान स्कूल-प्रणाली का रिश्ता

नि:संदेह 86वें संविधान संशोधन का चरित्र कई मायनों में जन-विरोधी था और इसका असली मकसद वैश्वीकरण के चलते 1990 के दशक में हमारी शिक्षा नीति व व्यवस्था में जो विकृतियां आने थीं उनका वैधानीकरण करना था। लेकिन तब भी इसके द्वारा 6-14 आयु समूह की मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा मिलना भारतीय इतिहास में एक ऐतिहासिक परिघटना है। इसके निम्नलिखित व्यापक निहितार्थ हैं - 1. प्रारंभिक शिक्षा का मौलिक अधिकार तभी सार्थक होगा, जब इसे अन्य मौलिक अधिकारों के साथ जोड़कर दिया जाए। यानी ऐसी प्रारंभिक शिक्षा नहीं दी जा सकती जो समानता, सामाजिक न्याय, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मजहब चुनने की स्वतंत्रता या जीने के हक का उल्लंघन करे। इसके साफ मायने हैं कि पड़ोसी स्कूल की अवधारणा पर आधारित समान स्कूल प्रणाली के जरिए शिक्षा पाना कम-से-कम 6-14 आयु समूह के बच्चों का मौलिक अधिकार बन चुका है। यह इसलिए कि अन्य कोई भी विकल्प समानता और सामाजिक न्याय सुनिश्चित नहीं करता। 2. केवल ऐसी ही प्रारंभिक शिक्षा दी जा सकती है जो संविधान के अनुरूप एक लोकतांत्रिक, समतामूलक, धर्मनिरपेक्ष एवं प्रबुद्ध समाज के निर्माण के लिए कारगर हो। कोई भी शिक्षा व्यवस्था या पाठ्यचर्या जो ऐसे समाज के लिए सक्षम नागरिकता का निर्माण नहीं करती, वह मौलिक अधिकार का उल्लंघन करेगी। 3. अनुच्छेद 21(क) के चलते किसी भी स्कूल द्वारा - चाहे वह सहायता-विहीन निजी स्कूल ही हो - 6-14 आयु समूह के बच्चों से फीस या अन्य किसी भी प्रकार का शुल्क/चार्ज लेना गैर-संवैधानिक होगा। अब निजी स्कूलों के पास केवल दो विकल्प बचे हैं - पहला, वे मुफ्त प्रारंभिक शिक्षा देने के लिए समाज से धन बटोरें- दूसरा, वे सरकार से अनुदान लें। 4. समतामूलक गुणवत्ता की प्रारंभिक शिक्षा देना राज्य की संवैधानिक जवाबदेही है जिससे बरी होने के इरादे से सरकार संसाधनों की कमी का बहाना नहीं कर सकती। संसाधनों के आबंटन में प्रारंभिक शिक्षा की तुलना में ऐसी किसी भी अन्य मद को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती, जो मौलिक अधिकार न हो। इसका निहितार्थ है कि यदि संसाधन की कमी है तो राज्य की जवाबदेही है कि वह कॉर्पोरेट घरानों द्वारा लिए गए बैंक कर्जों की माफी एवं विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) के लिए सब्सिडी आदि पर रोक लगाकर प्रारंभिक शिक्षा के लिए निवेश करे चूंकि उपरोक्त में से कोई भी खर्च कॉर्पोरेट भारत के मौलिक अधिकार के लिए नहीं है। 5. सर्वोच्च न्यायालय के उन्नीकृष्णन फैसले के अनुसार अनुच्छेद 41 के तहत प्रारंभिक शिक्षा के अलावा माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा (तकनीकी व प्रोफेशनल शिक्षा समेत) भी मौलिक अधिकार के दायरे में आते हैं, लेकिन इस अधिकार को राज्य अपनी आर्थिक क्षमता की सीमाओं के मद्देनजर ही मान्यता देगा। माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा को खासतौर पर मौलिक अधिकार के दायरे में लाना जन आंदोलन का तात्कालिक एजेंडा बनना चाहिए चूंकि इसके बगैर बेहतर कैरियर और उच्च शिक्षा व प्रोफेशनल कोर्सों के सब दरवाजे बंद हैं। नि:संदेह, सामाजिक विकास का सवाल केवल कैरियर और कोर्सों का सवाल नहीं है। लेकिन जब तक वर्तमान जनविरोधी पूंजीवादी विकास का खाका हावी है, तब तक शिक्षा को आगे बढ़ने की उपलब्धता तमाम संभावनाओं से जोड़ना मौलिक अधिकार का मुद्दा बनता है। दरअसल, उच्च शिक्षा व प्रोफेशनल संस्थानों में आरक्षण का मुद्दा दलितों, आदिवासियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए विकास के दरवाजे तभी खोल सकता है, जब इन वर्गों के बच्चों को समान स्कूल प्रणाली के खाके में समतामूलक माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा पाने का मौलिक अधिकार मिल जाए। इस दृष्टि से अनुच्छेद 21 (क) में संशोधन करके '18 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों' को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार दिलाना और वह भी बिना किसी शर्त के, जनता की अगली लड़ाई होगी।

शिक्षा अधिकार और समान स्कूल प्रणाली पर हमले

देश की शिक्षा नीति व व्यवस्था पर वैश्वीकरण के कारण हुए दुष्प्रभावों का विवरण ऊपर दिया गया है। लेकिन विगत 2-3 वर्षों में वैश्विक बाजार की ताकतों के हौसले सब हदों को पार कर रहे हैं। इसलिए शिक्षा के अधिकार और 'समान स्कूल-प्रणाली' पर हो रहे निम्नांकित नए हमलों को पहचानना जरूरी हो गया है - शिक्षा के अधिकार का विधेयक बनाने के लिए हाल में जो बहस चली है, उसमें 'समान स्कूल-प्रणाली' और पड़ोसी स्कूल की अवधारणा को हाशिए पर धकेलने के लिए एक नया शगूफा छोड़ा गया - निजी स्कूलों में पड़ोस के कमजोर तबके के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण का शगूफा। सारी बहस 'समान स्कूल-प्रणाली' और पड़ोसी स्कूल के महत्वपूर्ण मुद्दे से हटकर निजी स्कूलों के मालिकों की दिक्कतों, वहां के अभिजात माहौल में गरीब व पिछड़ी जातियों के बच्चों को आने वाली सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक परेशानियों और ऐसे आरक्षण के लिए संसाधनों के स्रोतों पर फोकस हो गई। यह मुद्दा गौण हो गया कि यदि इस प्रावधान के अनुसार 25 प्रतिशत गरीब बच्चे पड़ोस से आयेंगे तो जाहिर है कि 75 प्रतिशत फीस देने वाले संपन्न बच्चे पड़ोस से नहीं आयेंगे - तो फिर यह बराबरी हुई या खैरात? क्या संपन्न बच्चों से फीस लेना अनुच्छेद 21 (क) का उल्लंघन नहीं होगा? इससे भी बड़ा सवाल तो यह है कि इस प्रावधान से कितने गरीब बच्चों को लाभ मिलने की उम्मीद है।

आज देश भर में प्रारंभिक स्तर पर निजी स्कूलों में बच्चे कुल संख्या का बमुश्किल 20 प्रतिशत हैं। यानी तमाम निजी स्कूलों की प्रारंभिक शिक्षा देने की क्षमता 6-14 वर्ष आयु समूह के कुल 20 करोड़ बच्चों में से मात्र 4 करोड़ बच्चों की है। यदि निजी स्कूलों की इस क्षमता का पड़ोस के 25 प्रतिशत कमजोर तबके के लिए आरक्षित कर दिया जाये तो इससे लाभान्वित होने वाले बच्चों की संख्या 1 करोड़ से अधिक की नहीं हो सकती। तो शेष 19 करोड़ बच्चों के मौलिक अधिकार का क्या होगा?

जाहिर है कि 25 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधन का न तो शिक्षा के अधिकार से कोई संबंध है, न 'समान स्कूल-प्रणाली' से और ना ही 86वें संशोधन के अनुरूप शिक्षा प्रणाली के पुनर्निर्माण से। तब भी न केवल नीति निर्माण करने वाला राजनैतिक नेतृत्व और सरकारी तंत्र बल्कि पूरा मीडिया, गैर-सरकारी संगठन और यहां तक कि न्यायपालिका भी इसमें ऐसी उलझी हुई है जैसे कि मौलिक अधिकार का सारा दारोमदार इसी 25 प्रतिशत आरक्षण में है। शायद इसलिए क्योंकि इसके चलते शासक वर्ग के पक्ष में खड़ी देश की आर्थिक व्यवस्था और अन्य सुविधाओं में कोई परिवर्तन नहीं करने पड़ेंगे और साथ में शिक्षा के बाजारीकरण की रफ्तार भी यथावत बनी रहेगी।

जून 2006 में योजना आयोग ने 11वीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिपत्र जारी किया। इसमें अचानक बगैर किसी शैक्षिक विमर्श के वाउचर प्रणाली का प्रस्ताव रखा गया। वाउचर प्रणाली क्या है? इसके अनुसार कमजोर तबके के बच्चों को (कितने बच्चों को, यह नहीं बताया) वाउचर दे दिये जाएंगे, जिसको लेकर ये बच्चे जिस भी निजी स्कूल में प्रवेश पा लें, उसकी फीस सरकार अदा कर देगी। यह कोई नहीं बता रहा है कि क्या ये वाउचर 20 करोड़ बच्चों को दिये जायेंगे। ना ही यह बताया जा रहा है कि इन वाउचरों के जरिए किसी निजी स्कूल की फीस के कितने बड़े अंश का भुगतान किया जायेगा। क्या यह वाउचर कैपीटेशन फीस, भवन विकास फंड और अभिजात तर्ज पर आयोजित वार्षिक पिकनिक/डांस के खर्च का भी भुगतान करेगा? और उस स्थिति में क्या होगा जब अलग-अलग निजी स्कूलों की फीस अलग-अलग होगी? यह भी कोई नहीं बता रहा कि वाउचर प्रणाली कई देशों में असफल हो चुकी है। तत्कालीन सरकार के शासन में कुछ लोग वाउचर प्रणाली की जगह निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत आरक्षण का शगूफा छोड़कर मौलिक अधिकार की बहस को भ्रमित करने की कोशिश में हैं। इस मुद्दे पर अस्पष्टता या चुप्पी की एक ही व्याख्या हो सकती है - वाउचर प्रणाली निजी स्कूलों को पिछले दरवाजे से सरकारी धन उपलब्ध कराने और वैश्विक बाजार को संतुष्ट करने का नायाब तरीका है।

जैसा कि ऊपर बताया है कि विगत 25 वर्षों में वैश्वीकरण के तहत सरकारी स्कूल प्रणाली को धवस्त करने की नीति लागू की गयी। इसमें जब काफी सफलता मिल गयी तो विश्व बैंक और बाजार की अन्य ताकतें विभिन्न सहचर गैर-सरकारी एजेंसियों के जरिए तथाकथित शोध-अध्ययन आयोजित करके ऐसे आंकड़े पैदा करवा रही हैं कि किसी तरह सिद्ध हो जाये (यानी भ्रम फैल जाए) कि सरकारी स्कूल एकदम बेकार हो चुके हैं और इनको बंद करना ही देश के हित में होगा। आये दिन रिपोर्ट छप रही है यह बताते हुए कि सरकारी स्कूल कितने बदहाल हैं, सरकारी स्कूलों में शिक्षक नहीं हैं, यदि हैं तो वे पढ़ाते नहीं हैं और वहां जाने वाले विद्यार्थी न लिखना जानते हैं और न हिसाब करना। कोई रपट यह नहीं बताती कि ये बदहाल कैसे हुए और इस प्रक्रिया में देश के शासक वर्ग एवं बाजार की ताकतों की क्या भूमिका रही है। ◆

(प्रस्तुति : अरविंद,
शोधार्थी, महात्मा गांधी
अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा)

सार्वभौमिक जीवन मूल्यों में शिक्षा की अनिवार्यता

■ डॉ. प्रभु चौधरी

> " आधुनिक मानव के आचरण में तेजी से आती हुई नैतिक गिरावट को देखकर प्राय: सभी प्रमुख विचारक चिंतित हैं। देश के प्राय: सभी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और शैक्षिक मंचों के जीवन मूल्य की पुन: प्रतिष्ठा के संबंध में विचार व्यक्त किए जा रहे हैं, उपाय सुझाए जा रहे हैं और कहीं-कहीं तो ईमानदारी के प्रायोगिक उपक्रम भी किए जा रहे हैं, किंतु यह चिंता नई है। "

सार्वभौमिक मूल्य एवं जीवन परस्पर अभिन्न रूप से संबंधित होते हैं। जीवन को आदर्श की ओर उन्मुख करने, भौतिकता से आध्यात्मिकता की यात्रा की ओर अग्रसर करने और सुनिश्चित व सुविचारित कर्म की प्रेरणा देने वाले तत्व मूल्य ही है। मूल्य मानव अस्तित्व तथा उसके विकास के विधायक तत्व होते हैं। वस्तुत: ये वे आधार स्तंभ हैं जिन पर सभ्यता व संस्कृति की वस्तु किसी सत्व और सत्य की तात्विक धारणा है। ऐसे सत्व या सार तत्व की जिसमें वस्तु मूल्यवान होती है।

आधुनिक मानव के आचरण में तेजी से आती हुई नैतिक गिरावट को देखकर प्राय: सभी प्रमुख विचारक चिंतित हैं। देश के प्राय: सभी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और शैक्षिक मंचों के जीवन मूल्य की पुन: प्रतिष्ठा के संबंध में विचार व्यक्त किए जा रहे हैं, उपाय सुझाए जा रहे हैं और कहीं-कहीं तो इमानदारी के प्रायोगिक उपक्रम भी किए जा रहे हैं, किंतु यह चिंता नई है। हमारे धर्मसूत्र, स्मृतियां धर्मनिंध ग्रंथ इस बात के प्रभाव हैं। इन ग्रंथों में विद्यार्थी, गृहस्थ, वृद्धजन, व्यापारी, शासक सभी को मर्यादा में बांधे रखने का प्रयत्न है। यहां धर्म का अर्थ है वैयक्तिक, सामाजिक और प्रशासनिक आधार के नियम। इन नियमों को कुछ इस प्रकार ... किया गया था और उन्हें समाज की कुछ इस तरह स्वीकृति प्राप्त थी कि कोई सरलता से उनका उल्लंघन करने का साहस नहीं कर पाता था।

फलत: राज्यों की सीमाएं घटती बढ़ती रही एडम विभक्त और प्रयुक्त होते रहे, शासक वंश बदलते रहे, नए धर्मों और संप्रदायों का जन्म होता रहा, विरोधी मत और सिद्धांत उदित और अस्त होते रहे, पर नैतिक मूल्य जो जैसे थे, वे वैसे ही बने रहे, उन सब परिवर्तनों से अप्रभावित-निष्कंप। में ही वे आचार या नैतिक मान्यताएं भी जिन्होंने राजनीतिक उथल-पुथल और विदेशी आक्रमणों द्वारा राजनीतिक शक्ति के अधिग्रहण के बावजूद लेह-लद्दाख से लेकर रामेश्वरम् और द्वारका

से लेकर कामाख्या तक भारतीयजनों को एक सूत्रता से आबद्ध बनाए रखा। इतना ही नहीं, उन्होंने विदेशी, विधर्मी विजयी आक्रांताओं तक की जीवन और शासन प्रणाली को बहुत दूर तक अपने सांचे में ढाल दिया।

आज देश राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र, सुगठित और एकसूत्र बद्ध है। धर्मों और संप्रदायों का बाहुल्य है किंतु उनके बीच कोई ऐसी विशेष टकराहट नहीं है जिसका प्रभाव किसी भी नैतिक आस्थाओं पर पड़ सके। उलटे सबके एक दूसरे से काफी कुछ मिलते-जुलते जीवन मूल्य और नैतिक नियम-समवाय है। जीवन को अनुशासित और निर्यात करने की जितनी शक्ति शासन के पास आज है उतनी भारत के किसी शासक के पास कभी नहीं थी। अपने मानव-मूल्यों और आचार-संहिता को अखण्डित और अविघटित बनाए रखने के लिए असीम शक्ति राज्य के हाथ में है, फिर भी देखा जाता है कि भारतीय समाज में मनुष्य का नैतिक अवमूल्यन हो रहा है, आस्थाएं विखण्डित हो रही है, सामाजिक विघटन हो रहा है और परिवार छिन्न-भिन्न हो रहे हैं।

भारत ने अपना राजनीतिक ढांचा ही नहीं, अर्थनीति, शिक्षा प्रणाली, विकास प्रक्रिया और जीवनशैली सब कुछ पश्चिमी राष्ट्रों से ग्रहण की। फलतः यूरोप और अमेरिका की भाषा साहित्य, वेशभूषा, खान-पान और रहन-सहन सभी कुछ हमारे आराध्य बन गए। इन सबका प्रभाव वर्तमान पीढ़ी पर आत्महीनता और स्वयं पर अनास्था एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। स्वयं पर अनास्था का परिणाम होता है आत्म-नाश अर्थात् आदर्शों अपनी सांस्कृतिक विरासत अपने साहित्य और अपनी संपूर्ण चिंतन प्रणाली को चाहे वह आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक या कलात्मक हो, परित्याग कर उसके स्थान पर बाहरी चिंतन प्रणाली को प्रतिबंधित करना। यों कोई संस्कृति या जीवन प्रणाली स्वयं में पूर्ण या सर्वथा दोषहीन नहीं होती। हर संस्कृति अच्छे-बुरे घटकों का मिश्रण होती है फिर भी होता यह है कि आत्महीनता से भारत देश अपनी संस्कृतिक के सर्वोत्कृष्ट अंगों को छोड़ देता है और बाहरी संस्कृति के दुर्बलतम् अंगो को ही ग्रहण करता है, क्योंकि संस्कृति कोई भी हो उसके उदात्त घटक तक और संयम प्रभाव ही तो पराजित जनमानस का विशिष्ट गुण होता है। इसलिए नये भारत ने विदेशों से कुछ अच्छी बातों के साथ जिन रमणीय बातों का निर्बाध आयात किया है, वे हैं। अतीत पर अनास्था, अपने आदर्शों और जीवन प्रणाली के प्रति तुच्छता का भाव, भौतिक समृद्धि के प्रति ललक भरी दृष्टि, वर्जनाहीन समाज के प्रति आदर, उचितानुचित का विचार किए बिना किसी भी साधन से साध्य की प्राप्ति का प्रयत्न, अधैर्य, असहनशीलता और संयम मुक्त भोगवृत्ति और जब हमारे वरिष्ठ विचारक मानवीय मूल्यों की खोज में निकले हैं तो उन्हें

भारत ने अपना राजनीतिक ढांचा ही नहीं, अर्थनीति, शिक्षा प्रणाली, विकास प्रक्रिया और जीवनशैली सब कुछ पश्चिमी राष्ट्रों से ग्रहण की। फलतः यूरोप और अमेरिका की भाषा साहित्य, वेशभूषा, खान-पान और रहन-सहन सभी कुछ हमारे आराध्य बन गए। इन सबका प्रभाव वर्तमान पीढ़ी पर आत्महीनता और स्वयं पर अनास्था एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

यह ना भूलना चाहिए कि भारत के नैतिक अवमूल्यन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनका भी दायित्व है।

इनका समाधान क्या है? जीवन मूल्यों का ज्ञान और उनका औपचारिक शिक्षण यद्यपि महत्वपूर्ण है, किंतु क्या इतना उदात्त जीवन की संरचना के लिए पर्याप्त है? आदर्शों और मूल्यों का सहज बोध सामान्य नागरिक का होता है। काफी परिश्रम और व्यय करने के बाद शोध संस्थान जिस निष्कर्ष पर पहुंचे है, वे युगों-युगों से मानव को ज्ञात रहे हैं। यह बात अलग है कि वह उनका वैज्ञानिक विश्लेषण या उनकी सूक्ष्म कारका करने में असमर्थ है, किंतु जीवन में ऐसे अवसर कितने आते हैं जब उनका प्रयोग गहन विश्लेषण का मांग करता है। मुख्य समस्या तो उनके कार्यान्वयन की, उन्हें व्यवहार में उतारने की है। समाज और शिक्षा सब उसे से जुड़े हैं।

विद्यालय एक उद्यान है शिक्षा था एक कोमल पौधा तथा शिक्षक एक सतर्क माली की तरह होता है। अतः जिस प्रकार पौधों के विकास के लिए माली आवश्यकतानुसार उसे कोडने, धूप दिखाने तथा उसकी सिंचाई करने की व्यवस्था करता है। उसी प्रकार शिक्षक को भी अपने बालक छात्र के विकास के लिए शारीरिक योजना (शारीरिक शिक्षण, स्वास्थ्य सफाई आदि) मानसिक योजन (साहित्य विज्ञान कला आदि) तथा आत्मिक भोजन (अध्यात्म, मानव मूल्य, आचार शास्त्र आदि) का प्रबंध करना चाहिए। इनमें से प्रथम दो की पूर्ति हेतु किए गए प्रयास संतोष जनक कहे जा सकते हैं, किंतु तीसरा पक्ष विविध आयोगों एवं समितियों की सिफारिशों के बावजूद आधुनिक शिक्षा में उपेक्षित सा रहा है।

मूल्यपरक शिक्षा की आज जितनी आवश्यकता अनुभव की जा रही है उतनी पहले कभी नहीं थी, क्योंकि आज हम एक गहन संक्रांति काल से गुजर रहे हैं। हमारे प्राचीन परंपरागत मूल्यों में कुछ तो पूर्णतः विघटित हो चुके हैं और कुछ तीव्र

गति से विघटित हो रहे हैं किंतु नए मूल्य अभी प्रतिष्ठित अथवा स्थापित नहीं हो पाए हैं। आज सदाचरण, सत्य, अहिंसा, प्रेम, शांति जैसे शाश्वत परंपरागत मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की महती आवश्यकता है। ये मूल्य न केवल व्यक्तिगत उत्थान के लिए अपितु सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगति एवं शांति के लिए भी परम आवश्यक है।

विद्यालय एक लघु समाज है। प्राचीन परंपरा एवं संस्कृति से परिपोषित एवं वैयक्तिक अस्मिता एवं विभिन्न सामाजिक-आर्थिक कारणों से अधिकांश संस्थाएं स्वयं को धर्म-संकट की स्थिति में पा रही है। शिक्षण संस्था कितनी भी सामाजिक संस्था का अभिन्न अंग होती है। अतः समाज में विविध मानवीय मूल्यों में लक्षित गिरावट का प्रभाव शिक्षण व्यवस्था पर भी होना स्वाभाविक है। इस गिरावट के कौन से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष समवायी-असमवायी आदि कारण है एवं वर्तमान परिस्थितियों में उपलब्ध संसाधनों की सहायता से उनमें क्या कितना और कैसे सुधार लाया जा सकता है और तदर्थ शिक्षक संस्थाओं में विविध स्तरों पर कौन से आयोजन, परिवर्तन संभावित एवं व्यवहारिक होंगे, ऐसे ही कतिपय विचार-बिंदुओं पर चिंतन एवं मीमांसा करना प्रत्येक संवेदनशील, नागरिक, शिक्षक, शोधकर्ता एवं नीति निर्माता का कर्तव्य है, परंतु क्या वे इस दिशा में चिंतन करने के लिए प्रयत्नशील दृष्टिगोचर होते हैं।

पिछले एक डेढ़ दशकों में वैश्विक एवं राष्ट्रीय परिदृश्य तेजी से बदला है तथा दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है। मनुष्य एवं स्वतंत्र चिंतनशील प्राणी न होकर मानव संशोधन बन रहा है। भारत ने ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में संतोषजनक क्रांति की है। राष्ट्र के साहित्यकारों की कृतियां, वैज्ञानिकों के अनुसंधान, प्रौद्योगिकी, कला और चिकित्सा के विद्वानों की उपलब्धियां, सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका अत्यंत सराहनीय रही है। यह सफलता का विषय है परंतु जिस द्रुत गति से हम शाश्वत मूल्यों में अपनी आस्था खोये जा रहे हैं तथा तत्कालीन जीवन को सुखी बनाने हेतु जी तोड़ परिश्रम व प्रयत्न कर रहे हैं वह एक असुरक्षित भविष्य का द्योतक है। शिक्षक अभिभावक, राजनीतिक दलों के सदस्य अधिकारी व कर्मचारी सभी मूल्य संकट के दौर से गुजर रहे हैं। कुछ मूल्यों को हम ग्राह्य मानते हुए भी ग्रहण नहीं करते। कुछ मूल्यों में हमारा विश्वास ही नहीं है, परंतु उनके अनुरूप व्यवहार करने का दिखावा करते हैं। कुछ मूल्यों पर आधारित व्यवहार हम एक परिस्थिति में प्रकट करते हैं परंतु दूसरी परिस्थिति में नहीं, सभी लोग मूल्य अंतर्द्वंद्व में फंसे नजर आते हैं। समय की मांग है कि आधुनिक जीवन को मूल्य आधारित बनाया जाए।

जिस गति से मनुष्य जैसे जीवन प्राणी की मूल्यों में आस्था समाप्त हो रही है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि एक दशक के बाद ही लोगों का मूल्यों में विश्वास उठ जाएगा तथा समाज में नैतिकता का भी अंत हो जाएगा। सामाजिक मूल्यों में ह्रास के कारण मानव मानव के मध्य सामाजिक अलगाव पनप रहा है। भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने में मानव की मानवीयता कुंठित हो रही है। ग्रामों व नगरों की जीवनशैली संक्रमण के दौर में है। महानगरों की स्थिति विकराल रूप धारण कर चुकी है। अधिकांश नर-नारी धनार्जन करने में व्यस्त हैं। बड़ी संख्या में लोग मलिन बस्तियों में जीवन गुजारते हैं गरीबी में मूल्यों ने उनकी आस्था घटा दी है। संस्थाएं अपना व्यवस्थागत आधार खो रही है। शिक्षा की व्यवस्था भी जर्जर है। अस्पृश्यता, दहेज, भ्रूण हत्या, दवाओं की लत, करों की चोरी, काला बाजारी, धार्मिक उन्माद व सामाजिक आर्थिक न्याय में कमी आदि ने इक्कीसवीं सदी की सुखद भविष्य की आशाओं पर तुषारापात कर दिया है।

इक्कीसवीं शताब्दी में सुखद भविष्य को सुनिश्चित करने के लिए मूल्यों की शिक्षा अपरिहार्य है। नई शिक्षा नीति (1986) में यह स्वीकार किया गया है कि आवश्यक मूल्यों में ह्रास तथा समाज में बढ़ रही कटुता के प्रति अधिक चिंता के कारण सामाजिक व नैतिक मूल्यों के विकास के लिए शिक्षा को एक सशक्त साधन बनाने हेतु पाठ्यक्रम में पुनः समायोजन करने की आवश्यकता मुखरित हुई है।

शिक्षा के उद्देश्य केवल व्यक्ति को विद्वान बनाना नहीं है शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति वर्तमान संघर्षपूर्ण वातावरण में अपने अस्तित्व को पहचानने में समर्थ हो सके। मानवीय गुणों में रहित व्यक्ति पतीत होता है। सामाजिक विकास व प्रगति के लिए मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करना बहुत जरूरी है। मानव को समाज में ही रहना व जीना होता है। जल तथा वायु प्रदूषण के साथ-साथ अपने भावी व वर्तमान नागरिकों को प्रदूषित मूल्यों से भी बचाना जरूरी है। मन में इंसानियत के वृक्ष के रोपण की सख्त जरूरत है। इस कार्य के लिए मूल्य शिक्षा अत्यावश्यक है।

शिक्षा जीवन मूल्यों संप्रेषण के उत्प्रेरक का कार्य करती है। शिक्षण कार्य सौदेश्य होता है जिससे नई चेतना का संचार होता है। हम अपने कार्यों को जीवन के संदर्भ में देखने लगते हैं सत्य, प्रेम, दया, अहिंसा, शांति, शैक्षणिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक तथा धार्मिक मूल्य अध्यापक कक्षाओं में भी विभिन्न विषयों के माध्यम से दे सकता है। कक्षा में पढ़ाए गए पाठ को नया अर्थ मिलता है जिससे बालक के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाया जा सकता है। शिक्षक भी छात्रों का कल्याण तभी कर सकता है जब वह इस विश्वास से काम करें कि शिक्षा बालक के मार्ग को प्रशस्त करने में समर्थ है। ◆

(लेखक संपादक मंडल के सदस्य हैं)

पुस्तक

जीवन चरित - चौबीसवीं किस्त **मजदूर मंत्री**

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर-जीवन चरित

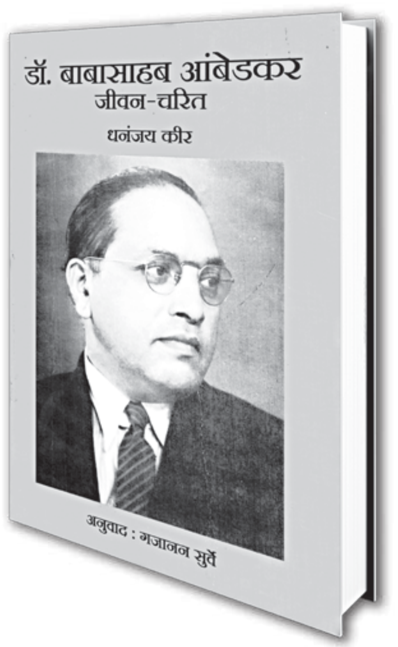

■ धनंजय कीर

“अगर नाजीवाद सफल हुआ, तो नाजी समाज रचनांतर्गत स्वतंत्रता का गला घोटा जाएगा। समता नकारी जाएगी और एक अनिष्ट मत के रूप में बंधुता पूरी तरह से समूल उखाड़ दी जायेगी। स्वतंत्रता प्राप्त होने से सारा कार्य पूरा नहीं होता। स्वतंत्रता का मूल्य इस बात पर निर्भर है कि, आप किस तरह की समाज रचना और संविधान का निर्माण करते हैं। इसलिए मजदूर अपनी सारी शक्ति इकट्‌ठी करके ‘भारत छोड़ो’ मांग करने की अपेक्षा नये भारत की मांग करें।”

दिल्ली जाने से पहले 27 जुलाई, 1942 को सायंकाल अम्बेडकर ने ‘टाइम्स ऑफ इंडिया पत्र के प्रतिनिधि से मुलाकात की। उस समय उन्होंने कहा, ‘गांधी जी का करेंगे या मरेंगे’ आदेश गैर-जिम्मेदाराना और मूर्खतापूर्ण है। उनकी राजनीतिक कूटनीतिज्ञता का दिवाला निकल जाने का यह द्योतक है। विश्वयुद्ध शुरू होने से कांग्रेस की गिरती हुई साख संभालने का वह एक प्रयास है। बर्बर लोगों के हिन्दुस्तान पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए हिन्दुस्तान की सीमा के नजदीक आ जाने पर देश के कानून और व्यवस्था को कमजोर करना पागलपन है। भारतीयों के संबंध में कहा जाए तो ब्रिटिश अब अंतिम खंदक में लड़ रहे हैं। अगर लोकतंत्र की विजय हुई तो भारत की स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं डाल सकेगा’ उन्होंने आगे कहा कि गांधी वृद्ध होने से उतावलेपन से ग्रस्त हो गये हैं।

कांग्रेसपरस्त समाचार पत्रों ने गांधी जी के ऊपर किये गये इस कड़वे हमले का प्रतिरोध करने के लिए अम्बेडकर पर भी उतना ही कड़ा हमला किया। उन्होंने अम्बेडकर पर दोषारोपण किया कि ब्रिटिश सरकार ने अम्बेडकर को महाराज्यपाल की कार्यकारिणी की समिति में मजदूर मंत्री के पद पर नियुक्त किया इसलिए वे गांधी जी को दोष देकर ब्रिटिशों का ऋण चुका रहे हैं। ऐसा नहीं कि उस समय गांधी जी का विरोध करने वाले अम्बेडकर ही अकेले राजनीतिज्ञ थे। मुस्लिम लीग ने तो अपने अनुयायियों को गांधी जी के संकल्पित संघर्ष से चार हाथ दूर रहने के लिए साफ हिदायत दी थी। हिन्दू महासभा के अध्यक्ष वीर सावरकर ने कहा ‘संघर्ष शुरू करने से पहले अगर कांग्रेस ने भारत एकता और अभंगता

मुझे सत्ताधारी दल का मोह नहीं, और अगर साधारण जनता की स्थिति सुधार करने में मेरे प्रयास विफल हुए तो मैं इस्तीफा देकर बंबई वापस लौट जाऊंगा। महाराज्यपाल की कार्यकारिणी समिति में अस्पृश्यों के प्रतिनिधियों की अपेक्षा मुसलमानों के तिगुना प्रतिनिधि हैं। मुसलमानों की संख्या करीब-करीब अस्पृश्यों की संख्या जितनी ही होने से इन बातों का अस्पृश्यों को बड़ा गुस्सा है।

के बारे में प्रतिज्ञापूर्वक आश्वासन दिया, तो हम कांग्रेस के उस संघर्ष का समर्थन जरूर करेंगे।' तथापि, सावरकर ने आगे कहा, 'गांधी जी की मनोवृत्ति देखने से ऐसा लगता है कि वे एक ही नहीं, अनेक पाकिस्तानों को स्वीकृति देने के लिए राजी हो जायेंगे।'

अम्बेडकर के दिल्ली जाने पर एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि कांग्रेस ने 8 अगस्त को अपना संघर्ष शुरू किया। महाराज्यपाल की कार्यकारिणी समिति की आपात बैठक आयोजित की गयी। उस बैठक में कार्यकारिणी समिति ने यह प्रस्ताव पारित किया कि, कांग्रेस का निर्णय देश को खलबली की परिस्थितियों में डालकर अराजक निर्माण करने के लिए सहायक होने वाला और मानवीय स्वतंत्रता की रक्षा के लिए चले प्रयासों को पागलपन से तोड़ देने वाला है, अंत: देश के लिए वह एक तरह की चुनौती ही है।

कांग्रेस के नेताओं और कार्यकर्ताओं की समूचे देश में धरपकड़ शुरू करके उन्हें गिरफ्तार किया गया, जिसकी वजह से सारे देश में क्षोभ की प्रचंड लहर उफन गयी। जनता ने सर्वत्र विद्रोह किया और सरकार ने उसे तोड़ने के लिए जो कठोर उपाय इस्तेमाल किये उससे सारे देश में हाहाकार मच गया। इस्लामी जनता इस संघर्ष से दूर रही। हिन्दू महासभावादी भी तटस्थ रहे। अम्बेडकर के अनुयायी उस संघर्ष से दूर रहे। उन्होंने सैनिकीकरण की समस्या की ओर अपना सारा ध्यान केंद्रित किया था।

23 अगस्त को दिल्ली में 'दलित वर्ग हितकारिणी मंडल' ने अम्बेडकर का साक्षात्कार किया। उस समय अम्बेडकर ने निर्भीकता से कहा, 'मुझे सत्ताधारी दल का मोह नहीं, और अगर साधारण जनता की स्थिति सुधार करने में मेरे प्रयास विफल हुए तो मैं इस्तीफा देकर बंबई वापस लौट जाऊँगा। महाराज्यपाल की कार्यकारिणी समिति में अस्पृश्यों के प्रतिनिधियों की अपेक्षा मुसलमानों के तिगुना प्रतिनिधि हैं। मुसलमानों की संख्या करीब-करीब अस्पृश्यों की संख्या जितनी ही होने से इन बातों का अस्पृश्यों को बड़ा गुस्सा है।'

यद्यपि अम्बेडकर को अधिकार और वैभव प्राप्त हुए थे, फिर भी उनकी व्यक्तिगत जिंदगी चिंतातुर थी। उस समय की उस उत्पाती परिस्थितियों में अपने बेटे और भतीजे की सुरक्षा के बारे में वे चिंतातुर थे। वे दोनों बंबई में रहते थे। वहां तो राजनीतिक दंगे उफन रहे थे। अम्बेडकर ने दूरध्वनि द्वारा उनकी कुशलता जानने का प्रयास किया, लेकिन वह भी विफल हुआ। तब उन्होंने उन दोनों को फौरन पत्र लिखकर यह इशारा दिया कि 'सजग रहो।' उन्हें इस बात का डर लगता था कि उनकी वजह से शायद उन दोनों पर हुल्लड़बाजों का गुस्सा उबल जाएगा।

केन्द्रीय विधानसभा में अगस्त के संघर्ष से उत्पन्न राजनीतिक परिस्थितियों पर बहस हुई। उस बहस को उत्तर देते समय अम्बेडकर ने कहा, 'मेरा दो-तीन साल का अनुभव यह कि अहिंसा के तत्व को अब उतार लगने लगा है। भारतमंत्री को निर्णय में फेर-बदल करने का जो अधिकार है, वह उन्हें विधान सभाओं को सौंप देना चाहिए। तथापि नये चुनाव न होने से विद्यमान विधान सभाएं पूरी तरह से प्रतिनिधिक है, यह स्वीकारना संभव नहीं होगा।'

मजदूर मंत्री अम्बेडकर ने 13 नवंबर 1942 को बंबई आकाशवाणी से 'भारतीय मजदूर और विश्व युद्ध' विषय पर भाषण किया। अपने भाषण में उन्होंने कहा, 'यह युद्ध केवल विश्व में स्थित भूप्रदेश का बंटवारा करने के लिए शुरू नहीं हुआ है, बल्कि मनुष्य-मनुष्य में और राष्ट्र-राष्ट्र में सहजीवन का रिश्ता कैसा हो, इस संबंध में मूलगामी परिवर्तन लाने के लिए हो रहा है। सहजीवन की शर्तों के पुनर्मूल्याकंन की मांग करने वाली यह क्रांति है। सामाजिक पुनर्रचना की यह मांग है। इसलिए अगर नाजीवाद सफल हुआ, तो नाजी समाज रचनांतर्गत स्वतंत्रता का गला घोटा जाएगा। समता नकारी जाएगी और एक अनिष्ट मत के रूप में बंधुता पूरी तरह से समूल उखाड़ दी जायेगी। स्वतंत्रता प्राप्त होने से सारा कार्य पूरा नहीं होता। स्वतंत्रता का मूल्य इस बात पर निर्भर है कि, आप किस तरह की समाज रचना और संविधान का निर्माण करते हैं। इसलिए मजदूर अपनी सारी शक्ति इकट्ठी करके 'भारत छोड़ो' मांग करने की अपेक्षा नये भारत की मांग करें। हिंसा की शक्ति की शरण जाकर प्राप्त की गयी शांति सच्ची शांति नहीं, वह खुदकशी है, वैसा करना यानी सुखी, सुंदर और स्वास्थ्यपूर्ण

जीवन व्यतीत करने के लिए जो कुछ उदात्त और जरूरी होता है, उसका विनाश करके बर्बरता और अनाचारिता की शरण में जाना है। हमला होने पर केवल लड़ने से इनकार करने पर युद्ध का उन्मूलन नहीं होगा। युद्ध का उन्मूलन करना है, तो युद्ध जीतकर न्याय से संधि प्रस्थापित करनी चाहिए।'

'पैसिफिक रिलेशन कमेटी' ने अम्बेडकर से अनुरोध किया कि वे क्विबेक में सितंबर 1942 में होने वाली सभा में 'भारत के अस्पृश्य' विषय पर एक प्रबंध पढ़ें। अम्बेडकर ने प्रबंध लिखा और उसे पढ़ने के लिए एन. शिवराज नामक अपने सहयोगी को क्विबेक भेजा। उस प्रबंध में अम्बेडकर ने कहा, 'गुलामी, खेती विषयक गुलामी और भूमि का उपयोग करके नीच काम करने वाली गुलामी जगत से नष्ट हो गयी है। लेकिन भारत की अस्पृश्यता की इतिश्री कुछ भी करने पर नहीं होती।' इसलिए उन्होंने अपने प्रबंध के अंत में अमरीकी लोगों को आह्वान किया कि, कांग्रेस के हिन्दू प्रचार से मोहित न होकर वे कांग्रेस का यह संघर्ष अस्पृश्य माने जाने वाले लाखों लोगों के कल्याण का विरोधी नहीं होगा, इसका विश्वास प्राप्त कर लें। आगे उन्होंने यह प्रबंध 'गांधी और अस्पृश्य वर्ग का उद्धार' (गांधी एन्ड दि इमॅन्सिपेशन ऑफ दि अन्टचेबल्स) नाम से प्रसिद्ध किया।

अम्बेडकर ने जनवरी 1943 के मध्य में सूरत के नागरिक दल के सामने भाषण किया, सैनिकी शिक्षा का महत्व समझाते हुए उन्होंने कहा कि, 'नागरिक दल में शिक्षा पाकर तैयार हुए सैनिक ही भावी स्वतंत्रता की रक्षा करेंगे।'

अम्बेडकर सूरत से बंबई आ गये। उसी दिन सायंकाल रामचंद्र भट माध्यमिक स्कूल में मराठा और तत्सम जातियों की ओर से उनका सत्कार हुआ। अपने भाषण में उन्होंने ब्राह्मणेतर दलों का मद्रास और बंबई प्रांतों में निरादर क्यों हुआ, उसके कारण बताए। 'लगभग बीस साल उनके हाथ में सत्ता होने पर भी उनका पतन हुआ। इसका पहला कारण यह कि उन दलों ने अपने लोगों को नौकरियां देने के अतिरिक्त सत्ता का कुछ भी उपयोग नहीं किया। उनका रूख संकुचित था। उनकी योजनाओं का क्षेत्र विस्तृत नहीं था। उनके अनुयायी साधारण जनता, किसान और मजदूर थे, जिनका उन्हें समर्थन प्राप्त था। लेकिन उनके कल्याण की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया और उतनी ही खेद की बात यह कि उन्होंने जिनको नौकरियों में लगाया, वे एक बार उनमें स्थिर होने पर उन समाजों को भूल गये, जिनमें से चढ़कर वे ऊपर आये थे। वे विदेशी लोगों की तरह उद्धत और घमंडी हो गये। पश्चिमी देशों में लोकतंत्र का ध्येय सफल नहीं हुआ। क्योंकि वह हुजूर दल के यानी परंपरावादी लोगों के हाथ में पड़ा था। अगर अलसंख्यक ब्राह्मण जाति के हाथ में सत्ता गयी, तो इस देश की भी यही हालत होगी। किसी भी राजनीतिक दल की मजबूती के लिए तीन बातें जरूरी हैं। पहली बात यह कि दल का नेता इतना महान हो कि वह किसी भी विपक्षी नेता के समतुल्य साबित हो। दूसरी बात यह कि अनुशासनबद्ध संगठन और तीसरी बात यह कि स्पष्ट कार्यक्रम। अगर भारत में लोकतंत्र को सफल बनाना हो और उसे प्रतिगामी लोगों के आघातों से बचाना हो, तो इन बातों की पूर्ति होनी चाहिए।'

न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे की जन्मशताब्दी समारोह के निमित्त 19 जनवरी 1943 को पुणे में एक बड़ी सभा हुई थी। रानाडे भारत के सुपुत्र, महान समाज सुधारक, उदार मनीषी और सात्विक प्रवृत्ति के देशप्रेमी थे। उस समारोह के उपलक्ष्य में अम्बेडकर को भाषण करने के लिए साग्रह आमंत्रण दिया गया था। उनका यह भाषण उन्होंने आज तक जो अनेक भाषण किये, उनमें विशेष महत्व का साबित हुआ। अपने भाषण के प्रारंभ में ही उन्होंने महापुरूषों का मूल्यांकन करने की जो तीन प्रचलित सिद्धांत रूप् पद्धतियां, उनका परिचय श्रोताओं से कराया। उन्होंने कहा, ऑगस्ताईन का मत यह कि इतिहास यानी विधाता की योजना का विकास। वह होते समय मानव जाति युद्ध और त्याग की खाई से निकलती है और वह ईश्वरी योजना मुक्तिदिन तक पूरी होती है। ऑगस्ताईन का यह मत अब सिर्फ ब्रह्मवेत्ता ही मानते हैं। बकल का कहना यह है कि भूगोल और भौतिकशास्त्र ही इतिहास के निर्माता हैं। कार्ल मार्क्स का कहना है कि आर्थिक कारणों से इतिहास निर्माण होता है। बकल और कार्ल मार्क्स का कहना पूर्ण सत्य नहीं है। उनका यह

रानाडे की तुलना गांधी जी और जिन्ना के साथ करते समय अपने भाषण में अम्बेडकर ने आगे कहा, 'गांधी और जिन्ना की अपरिमित आत्मश्लाघा के साथ स्पर्धा करने वाले अन्य दो व्यक्ति ढूंढकर भी मिलना मुश्किल है। खुद ही महत्ता और अधिकार बढ़ाना ही उनका सब कुछ है। वे मानते हैं कि देशनीति उनके खेल का एक प्यादा है। चापलूसी करने वाले लोगों की स्तुति सुनकर उन्हें ऐसा लगता है कि वे दोषातीत है।' अम्बेडकर सरीखे लोगों के मुंह से निकले हुए उन उद्गारों से पता चलता है कि गांधी जी और जिन्ना में निहित अहंकार कितनी चरमसीमा तक पहुंच गया था।

कथन उचित नहीं है कि व्यक्ति इतिहास का निर्माण नहीं करते, बल्कि व्यक्ति निरपेक्ष शक्ति इतिहास का निर्माण करती है। आग की चिनगारी निर्माण करने के लिए घिसे जाने वाले चकमक को व्यक्ति की शक्ति की जरूरत होती ही है।

लश्करी प्रवृत्ति के वीर पुरूष राष्ट्र का कल्याण विशेषता साध्य नहीं करते। सामाजिक जीवन पर उनके जीवन का असर नहीं दिखायी पड़ता। मनुष्य की महानता की व्याख्या करते समय कार्लाइन कहता है कि अलग महापुरूषों में एक अवश्यंभावी गुण होना चाहिए। रॉसबेरी के मातानुसार श्रेष्ठ व्यक्ति समाज की गंदगी को साफ करने के लिए प्राकृतिक या अतिमानवी शक्ति लेकर अवतीर्ण होता है। ये सब निष्कर्ष अधूरे हैं। कोई भी निष्कर्ष पूरा नहीं। अपने कहने का निष्कर्ष निकालकर उन्होंने कहा, 'श्रेष्ठ पुरूष समाज को जोरदार गति देने की भावना से प्रेरित होता है। वह प्रासंगिक रूप में समाज पर टीका के कोड़े लगा कर उसकी मलिनता धो डालता है।'

यह निष्कर्ष रानडे पर लागू किया जो तो अम्बेडकर के मतानुसार रानाडे उनके समय के प्रचलित निष्कर्षों के आधार पर निःसंदेह श्रेष्ठ पुरूष माने जा सकते हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी निष्कर्ष पर उन्हें परखा जाए, तो भी वे श्रेष्ठ पुरूष कहे जा सकते हैं। रानाडे की सारी जिंदगी सामाजिक अन्याय के खिलाफ एक कड़ा झगड़ा थी। समाज सुधार के लिए वह संघर्ष था। रानाडे सामाजिक अधिकार करने के लिए संघर्षरत रहे। व्याधिग्रस्त और निःसत्व होकर पड़े हिन्दू समाज के दिल में चेतना पैदा कर सामाजिक लोकतंत्र के निर्माण का उन्होंने महत प्रयास किया।

रानाडे की तुलना गांधी जी और जिन्ना के साथ करते समय अपने भाषण में अम्बेडकर ने आगे कहा, 'गांधी और जिन्ना की अपरिमित आत्मश्लाघा के साथ स्पर्धा करने वाले अन्य दो व्यक्ति ढूंढकर भी मिलना मुश्किल है। खुद ही महत्ता और अधिकार बढ़ाना ही उनका सब कुछ है। वे मानते हैं कि देशनीति उनके खेल का एक प्यादा है। चापलूसी करने वाले लोगों की स्तुति सुनकर उन्हें ऐसा लगता है कि वे दोषातीत है।' अम्बेडकर सरीखे लोगों के मुंह से निकले हुए उन उद्गारों से पता चलता है कि गांधी जी और जिन्ना में निहित अहंकार कितनी चरमसीमा तक पहुंच गया था।

अम्बेडकर ने आगे कहा, 'भारतीय समाचार पत्रों का व्यवसाय पहले एक उच्च ध्येय था, किन्तु आज वह एक धंधा बन गया है। कांग्रेसपरस्त समाचार पत्रों में प्रकाशित लेख यानी भाड़े के लेखकों द्वारा अपने लाडले वीरों के बारे में गाये अतिरिक्त स्तुतिपाठ है।'

किसी विभूति के बारे में अत्यांतिक आदर दिखाना अलग बात है और वह विभूति जो कहेगी उसके अनुसार अंधानुसरण करना अलग बात है। कुछ दिनों बाद अम्बेडकर का यह व्याख्यान 'रानाडे, गांधी और जिन्ना' नाम से किताब के रूप में प्रकाशित हुआ। उस पुस्तक की प्रस्तावना में अम्बेडकर ने कहा है कि 'जो कोई अपने कालखंड पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव प्रतिबिंबित करने की ईर्ष्या रखता है और महान तत्वों और ज्वलन्त समस्याओं हरसंभव सहायता देने के लिए झगड़ता है, उसके राग और दोष को धार होनी चाहिए अन्यथा वह कार्य उसके हाथ से नहीं हो सकता। मैं अन्याय, शोषण, बड़प्पन और ढोंगबाजी का द्वेष करता हूं और जिनमें ये दुर्गुण होते हैं वे मुझे तिरस्कृत लगते हैं। अपने आलाचकों से मुझे कहना है कि, मैं यह मानता हूं कि मुझमें निहित द्वेष एक शक्ति है क्योंकि जिन समस्याओं के प्रति मुझे प्रेम है, जिनके प्रति मैं विश्वास रखता हूं और जिनके बारे में मुझे किसी भी प्रकार का खेद नहीं होता, यह बुद्ध दर्शन है। बुद्ध का दर्शन अंतिम साध्य के रूप में अम्बेडकर को स्वीकृत था। किन्तु सापेक्ष हिंसा एक परिणामकारी साधन है, इस पर भी उनका विश्वास था। उनके मत में गांधी जी द्वारा स्वीकृत अहिंसा तत्व बौद्ध धर्म से लिया हुआ न होकर जैन धर्म से लिया गया था क्योंकि जैन की भांति बुद्ध ने अहिंसा तत्व को दूसरे छोर तक नहीं बना था।'

(पॉपुलर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित धनंजय कीर की लिखी पुस्तक डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जीवन चरित से साभार)

(क्रमशः शेष अगले अंक में)

सत्यमेव जयते

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर बीसवीं शताब्दी के एक महान राष्ट्रीय नेता थे। वे बुद्धिजीवी, विद्वान तथा राजनीतिज्ञ थे। देश के निर्माण में उनका महान योगदान है। उन्होंने दलितों व शोषितों को अन्य लोगों के समान ही कानूनी अधिकार दिलाने के लिए अनेक आंदोलनों का नेतृत्व किया और समाज के दलित वर्ग के लाखों लोगों को उनके मानवाधिकार दिलाए। उन्होंने भारत के संविधान के निर्माण के लिए संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में एक अमिट छाप छोड़ी। वे सामाजिक न्याय के संघर्ष के प्रतीक हैं।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की स्थापना प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित बाबासाहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर शताब्दी समारोह समिति द्वारा की गई सिफारिशों को अमल में लाने के लिए की गई थी।

प्रतिष्ठान का मुख्य उद्देश्य देश-विदेश में लोगों के बीच बाबासाहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की विचारधारा को आगे बढ़ाना तथा उसके प्रचार के लिए कार्यक्रमों तथा गतिविधियों को लागू करना है। प्रतिष्ठान को भारतरत्न डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के शताब्दी समारोह के दौरान् चिह्नित किए गए कार्यक्रमों तथा योजनाओं का प्रबंधन, प्रशासन तथा उन्हें आगे बढ़ाने का दायित्व सौंपा गया है।

योजनाएं/कार्यक्रम/परियोजनाएं :-

♦ **डॉ. अम्बेडकर के जन्म दिवस/महापरिनिर्वाण दिवस के अनुपालन/ समारोह :**

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जन्म दिवस 14 अप्रैल को और महापरिनिर्वाण दिवस 6 दिसम्बर को संसद भवन के उद्यान में समारोहपूर्वक मनाया जाता है। इस गरिमापूर्ण दिवस पर भारत के महामहिम राष्ट्रपति राष्ट्र की ओर से श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं। साधारणतया समारोह में महामहिम राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष एवं अन्य उच्च पदाधिकारीगण उपस्थित रहते हैं। इसके अतिरिक्त भारी संख्या में साधारण जन भी बाबासाहेब को श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं।

♦ **विश्वविद्यालयों/संस्थाओं में डॉ. अम्बेडकर पीठ :**

इस योजना की शुरुआत 1993 में की गई थी। इसका उद्देश्य विद्वानों, विद्यार्थियों तथा अकादमियों को सभी प्रकार से सुसज्जित अध्ययन केन्द्र उपलब्ध कराना है, जिससे वे डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के विचारों एवं आदर्शों को समझने, उनका मूल्यांकन करने तथा उनका प्रचार-प्रसार करने के लिए आवश्यक उच्च अध्ययन एवं शोध कार्य कर सकें। अब तक कुल दस अम्बेडकर पीठ विभिन्न महत्त्व वाले क्षेत्रों जैसे विधिक अध्ययन, शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन एवं विकास, सामाजिक नीति एवं सामाजिक कार्य, समाज कार्य, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानव-विज्ञान, दलित आन्दोलन एवं इतिहास, अम्बेडकरवाद एवं सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक न्याय में स्थापित किए जा चुके हैं।

♦ **डॉ. अम्बेडकर चिकित्सा सहायता योजना**

यह योजना मूलरूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के ऐसे गरीब मरीजों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है, जिनकी पारिवारिक वार्षिक आय रु. 1,00,000/- से कम हो और उसे गम्भीर बीमारियों जैसे किडनी, दिल, यकृत, कैंसर, घुटना और रीढ़ की सर्जरी सहित कोई अन्य खतरनाक बीमारी हो, जिसमें सर्जिकल ऑपरेशन की जरूरत हो।

संशोधित योजना-2014 के अनुसार, आवेदन पत्र को जाति प्रमाण पत्र, आय प्रमाण पत्र, राशन कार्ड की सत्यापित प्रतियों और संबंधित अस्पताल के चिकित्सा अधीक्षक द्वारा उचित रूप से हस्ताक्षरित अनुमानित लागत प्रमाण पत्र की मूल प्रति के साथ जमा करना पड़ता है। आवेदन पत्र का अनुमोदन और अग्रसारण डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की आमसभा के सदस्यों या स्थानीय वर्तमान सांसद (लोकसभा या राज्यसभा) या संबंधित जिला के जिलाधिकारी, उप जिलाधिकारी, आयुक्त द्वारा या संबंधित राज्य/संघ क्षेत्र के स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण विभाग के सचिव द्वारा किया जाता है। इलाज के लिए अनुमानित लागत का 100 प्रतिशत सर्जरी से पहले ही सीधे संबंधित अस्पतालों को एक किस्त में जारी कर दिया जाता है। विभिन्न बीमारियों के लिए अधिकतम राशि को निश्चित कर दिया गया है जैसे हृदय शल्य चिकित्सा के लिए रुपये 1.25 लाख, किडनी सर्जरी/डाइलिसिस के लिए रुपये 3.50 लाख, कैंसर सर्जरी/कीमोथिरेपी/रेडियोथिरेपी के लिए रुपये 1.75 लाख, मस्तिष्क सर्जरी के लिए रुपये 1.50 लाख, किडनी/अंग प्रत्यारोपण के लिए रुपये 3.50 लाख, रीढ़ की सर्जरी हेतु रुपये 1.00 लाख और अन्य जीवन घातक बीमारियों के लिए रुपये 1.00 लाख। अस्पताल को यह भुगतान चेक या डिमांड ड्राफ्ट द्वारा किया जाता है।

♦ **अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति से संबंधित विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक (दसवीं कक्षा) परीक्षा हेतु डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय योग्यता पुरस्कार योजना**

इस योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जाति और जनजाति से संबंधित योग्य विद्यार्थियों को एकमुश्त नकद पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। देश में प्रत्येक बोर्ड के लिए चार पुरस्कार निर्धारित हैं। तीन सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को क्रमशः 60,000/-, रु. 50,000/- और रु. 40,000/- प्रदान किए जाते हैं। यदि इन तीन विद्यार्थियों में से कोई लड़की नहीं होती है, तो इसके अतिरिक्त सर्वाधिक अंक पाने वाली लड़की को रु. 40,000/- का विशेष पुरस्कार प्रदान किया जाता है। योजना में अनुसूचित जाति एवं जनजाति, प्रत्येक के लिए, 10,000/- एकमुश्त राशि की 250 विशेष योग्यता पुरस्कारों की परिकल्पना भी की गई है, जो उन छात्रों को प्रदान किए जाते हैं जो प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान के बाद सर्वाधिक अंक प्राप्त करते हैं।

♦ **उच्च माध्यमिक परीक्षाओं (12वीं कक्षा) में अनुसूचित जाति से संबद्ध योग्य विद्यार्थियों के लिए डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय योग्यता पुरस्कार योजना :**

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान ने 2007-08 के दौरान् कमजोर वर्गों के विद्यार्थियों की पहचान करने, उन्हें बढ़ावा देने और उनकी सहायता करने के लिए अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को योग्यता पुरस्कार प्रदान करने की योजना तैयार की। पुरस्कार में, किसी भी शैक्षणिक बोर्ड/परिषद द्वारा आयोजित 12वीं स्तर की परीक्षा में नियमित विद्यार्थी के रूप में तीन सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को क्रमशः चार वर्गों अर्थात् कला, विज्ञान (गणित के साथ), विज्ञान (जीव विज्ञान और या गणित के साथ) तथा वाणिज्य में रु. 60,000/-, रु. 50,000/- तथा रु. 40,000/- के प्रदान किए जाते हैं। योग्यता श्रेणी के प्रथम तीन स्थानों के बाद प्रत्येक वर्ग में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाली अगली तीन लड़कियों को प्रत्येक को रु. 20,000/- की दर से विशेष पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। इस तरह प्रत्येक बोर्ड के लिए कुल 12 पुरस्कार होते हैं।

♦ **अनुसूचित जाति के अत्याचार-पीड़ितों हेतु डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय राहत योजना**

इस योजना की प्रकृति आकस्मिक व्यवस्था के तौर पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार

निरोधक) अधिनियम, 1989 के तहत अपेक्षाकृत जघन्य अपराधों के पीड़ितों को तात्कालिक मौद्रिक सहायता प्रदान करने की है। इस योजना के अन्तर्गत सहायता राशि सीधे पीड़ित या उसके पारिवारिक सदस्यों या आश्रितों को प्रतिष्ठान द्वारा तब प्रदान की जाती है, जबकि उपर्युक्त अधिनियम के तहत अपराध की प्राथमिक रिपोर्ट दर्ज कर ली जाती है और संबंधित राज्य सरकार/केन्द्र शासित प्रदेश द्वारा इस संबंध में सूचित कर दिया जाता है। परिवार के कमाऊ सदस्य की हत्या/मृत्यु पर रु. 5.00 लाख की सहायता राशि प्रदान की जाती है, गैर कमाऊ सदस्य की मृत्यु/हत्या पर सहायता राशि रु. 2.00 लाख, कमाऊ सदस्य के स्थायी विकलांगता पर सहायता राशि रु. 3.00 लाख, गैर कमाऊ सदस्य के स्थायी विकलांगता पर सहायता राशि रु. 1.50 लाख तथा बलात्कार के लिए सहायता राशि रु. 2.00 लाख है तथा ऐसी आगजनी, जिससे कोई परिवार पूर्णत: बेघर हो जाए तो सहायता राशि रु. 3.00 लाख निर्धारित की गई है।

- **डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान राष्ट्रीय निबंध प्रतियोगिता योजना**

प्रतिष्ठान की इस वार्षिक निबंध प्रतियोगिता का उद्देश्य विद्यालयों/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों/संस्थाओं के छात्रों को सामाजिक मुद्दों पर लिखने के लिए प्रोत्साहित करना तथा मूलभूत सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर डॉ अम्बेडकर के विचारों के प्रति उनकी रुचि को जगाना है। यह प्रतियोगिता मान्यता प्राप्त स्कूलों (माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक अर्थात् 9वीं कक्षा से 12वीं कक्षा तक)/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों/संस्थाओं के विद्यार्थियों हेतु है। विद्यालयों से प्राप्त हिन्दी और अंग्रेजी में सबसे अच्छे तीन निबंधों के लिए पुरस्कार की राशि रु. 10,000 से रु. 25,000 तक है और महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों/संस्थाओं के विद्यार्थियों के लिए यह राशि रु. 25,000 से रु. 1,00,000 तक है।

- **महान संतों के जन्म दिवस/परिनिर्वाण दिवस समारोह हेतु डॉ. अम्बेडकर योजना**

इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न संस्थाओं/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों/ गैर सरकारी संगठनों को, महान संतों जैसे- संत कबीर, गुरु रविदास, गुरु घासीदास, चोखामेला, नंदनार, नारायणा गुरु, नामदेव, भगवान बुद्ध, महर्षि बाल्मीकि, महात्मा फूले, सावित्री बाई फूले, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर का जन्म दिवस समारोह मनाने हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के लिए अधिकतम अनुदान राशि रुपये 5.00 लाख तथा गैर सरकारी संगठनों के लिए रुपये 2.00 लाख की राशि निर्धारित की गई है।

- **सामाजिक परिवर्तन हेतु डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार**

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा भारत और मानवीय परिवार के प्रति की गई वृहद् विलक्षण सेवाओं के पुण्य स्मरण में इस पुरस्कार की शुरुआत वर्ष 1995 में की गई थी। यह पुरस्कार असमानता, अन्याय और शोषण के कारणों के विरुद्ध सख्ती से मामले उठाने और सुलझाने के उदाहरणीय योगदान तथा सामाजिक समूहों के बीच सामंजस्य, सामाजिक परिवर्तन के लिए सामाजिक सौहार्द और मानवीय गरिमा के आदर्शों की स्थापना के लिए संघर्ष करने वाले व्यक्ति(यों) या समूह(ों) को प्रदान किया जाता है। प्रति वर्ष एक पुरस्कार, जिसमें रु. 15.00 लाख की राशि और प्रशस्ति पत्र दिये जाने का प्रावधान है।

- **कमजोर वर्गों के उत्थान तथा सामाजिक समझ हेतु डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार**

इस राष्ट्रीय पुरस्कार की स्थापना वर्ष 1992 में की गई थी और इस पुरस्कार हेतु चयन किसी प्रकाशित पुस्तक या फिर जन आंदोलन के आधार पर होता है, जिसने समाज के कमजोर वर्गों के जीवन की गुणवत्ता पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला हो। प्रति वर्ष एक पुरस्कार प्रदान करने का प्रावधान है, जिसमें रु. 10.00 लाख की राशि और प्रशस्ति पत्र दिया जाता है।

♦ अंतर्जातीय विवाहों के द्वारा सामाजिक एकता हेतु डॉ. अम्बेडकर योजना

इस योजना का उद्देश्य, अंतर्जातीय विवाह जैसे सामाजिक रूप से साहसिक कदम उठाने वाले, नए विवाहित दम्पति को उनके वैवाहिक जीवन के शुरुआती दौर को सही ढंग से चलाने के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना है। विधिसम्मत अंतर्जातीय विवाह के प्रोत्साहन हेतु राशि रु. 2.50 लाख प्रति विवाह है। योग्य दम्पति को प्रोत्साहन राशि का 50 प्रतिशत उनके संयुक्त नाम के डिमांड ड्राफ्ट द्वारा तथा शेष 50 प्रतिशत राशि उनके संयुक्त नाम में पांच वर्ष की अवरुद्धता अवधि के साथ सावधि जमा में रखा जाता है।

♦ सामाजिक न्याय संदेश

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का प्रकाशन दिसम्बर 2002 से हो रहा है। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित, सशक्त एवं समृद्ध समाज और राष्ट्र की संकल्पना को साकार करने के 'संदेश' को आम नागरिकों तक पहुंचाने में 'सामाजिक न्याय संदेश' की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'सामाजिक न्याय संदेश' देश के नागरिकों में मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जगाने के लिए समर्पित है।

'सामाजिक न्याय संदेश' बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों व उनके दर्शन तथा फाउन्डेशन के कार्यक्रमों एवं योजनाओं को आम नागरिकों तक पहुंचाने का काम बखूबी कर रहा है। इसकी एक प्रति का मूल्य रु. 10/- है। एक वर्ष के लिए चंदे की दर रु. 100/-, दो वर्ष के लिए रु. 180/- और तीन वर्ष के लिए रु. 250/- है। सामाजिक न्याय संदेश प्रतिष्ठान की वेबसाइट www.ambedkarfoundation.nic.in पर भी उपलब्ध है।

♦ डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र

''डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र'' राष्ट्रीय महत्त्व के एक विश्व स्तरीय बहुआयामी अध्ययन के प्रति समर्पित होगा। यह केन्द्र जनपथ और डॉ. आर.पी. रोड के प्रतिच्छेदन पर एक महत्त्वपूर्ण अवस्थिति पर 3.25 एकड़ से अधिक क्षेत्र में फैला होगा, जो लुटियन दिल्ली की महत्त्वपूर्ण इमारतों से घिरा होगा। केन्द्र की मुख्य सुविधाओं में शोध एवं प्रसार केन्द्र, मीडिया सह इंटरप्रेटेशन केन्द्र, पुस्तकालय, प्रेक्षागृह, सम्मेलन केन्द्र और प्रशासनिक स्कंध शामिल होंगे।

♦ डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय स्मारक

डॉ. अम्बेडकर ने 6 दिसंबर, 1956 को अपने निवास 26, अलीपुर रोड, दिल्ली में अंतिम सांसें ली थीं। इस स्थल को महापरिनिर्वाण स्थल के रूप में पवित्र माना जाता है और तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा इसे राष्ट्र को समर्पित किया गया था। 2 दिसंबर, 2002 को डॉ. अम्बेडकर के जीवन और लक्ष्यों पर फोटो गैलरी की स्थापना कर सरकार ने इसी जगह एक अच्छी तरह अभिकल्पित और पूर्ण रूप से विकसित डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय स्मारक के निर्माण की प्रक्रिया शुरू की।

♦ बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के संकलित कार्य (सी.डब्ल्यू.बी.ए.) परियोजना

महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित बाबासाहेब अम्बेडकर के संकलित कार्यों के अनुवाद और प्रकाशन का कार्य डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा हिन्दी एवं 8 अन्य क्षेत्रीय भाषाओं-मलयालम, तमिल, तेलुगु, बंगाली, उड़िया, पंजाबी, उर्दू एवं गुजराती में करवाया जा रहा है। हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाले 360 खंडों (प्रत्येक भाषा के 40 खंड) में से 197 खंड प्रकाशित हो चुके हैं। शेष के 163 खंड अभी मुद्रण और अनुवाद की प्रक्रिया में हैं।

प्रतिष्ठान ने बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के संकलित कार्यों के खंडों को अंग्रेजी में भी पुन: प्रकाशित किया है तथा अंग्रेजी के 10 खण्डों का प्रकाशन ब्रेल लिपि में किया है। शेष खंड ब्रेल लिप्यंतरण की प्रक्रिया में हैं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर और मीडिया

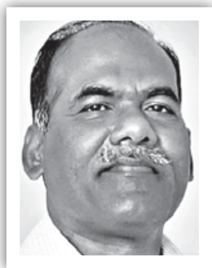

■ बी.पी. महेश चंद्र गुरु

> "पत्रकारिता का पहला कर्तव्य है ''बिना किसी प्रयोजन के समाचार देना, निर्भयतापूर्वक उन लोगों की निंदा करना जो गलत रास्ते पर जा रहे हों- फिर चाहे वे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों व पूरे समुदाय के हितों की रक्षा करने वाली नीति को प्रतिपादित करना।''"

अम्बेडकर ने मीडिया व विशेषकर उनके स्वयं द्वारा प्रकाशित-संपादित समाचारपत्रों का, हिंदू धर्म के मिथकों, उसके रहस्यवाद और खोखली प्रथाओं का खुलासा करने के लिए प्रभावी इस्तेमाल किया। इन्हीं मिथकों, परंपराओं और प्रथाओं का इस्तेमाल, भारतीय समाज की अन्यायपूर्ण व्यवस्था को औचित्यपूर्ण ठहराने के लिए किया जाता था। डॉ. अम्बेडकर ने पारंपरिकता, धार्मिक दकियानूसीपन और अंधविश्वासों की जंजीरों को तोड़ा। उन्होंने ब्राह्मणवादी धर्म की संपूर्ण व्यवस्था को सिरे से खारिज किया। इसमें शामिल थे वेदों की अमोघता, धार्मिक कर्मकांडों की प्रभावोत्पादकता, पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति के बाद मोक्ष प्राप्ति की अवधारणा और इस ब्रह्मण्ड के रचियता के रूप में ईश्वर की स्वीकार्यता। उन्होंने उपनिषदों के दर्शन को काल्पनिक ठहराया। उन्होंने चातुरवर्ण की व्यवस्था - जिसे 'पवित्र संस्था' और 'ईश्वरीय विधान' की संज्ञा दी गई थी - का कड़ा विरोध किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि चातुरवर्ण से अधिक घृणित सामाजिक संगठन की कोई व्यवस्था नहीं हो सकती। चातुरवर्ण व्यवस्था लोगों को अपमानित करती है, उन्हें लकवाग्रस्त और पंगु बनाती है और समाज की बेहतरी के लिए काम करने से रोकती है।

डॉ. अम्बेडकर प्रेस की स्वतंत्रता के जबरदस्त हामी थे। भारत के संविधान का निर्माण करते समय उन्होंने अभिव्यक्ति और वाणी की स्वतंत्रता को उसमें महत्वपूर्ण स्थान दिया। संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में वाक् स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को मूल अधिकार का दर्जा दिया गया है और इस अधिकार पर राज्य द्वारा, इसी अनुच्छेद के उपखण्ड (2) के अंतर्गत, केवल युक्तियुक्त निर्बंधन ही लगाए जा सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने क्रांतिकारी विचारों,

अनुभवों और विभिन्न विषयों पर अपनी राय को अपने अखबारों द्वारा जनता के सामने रखा। इन अखबारों में शामिल थे 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'समता', 'जनता' व 'प्रबुद्ध भारत'। अम्बेडकर ने कोल्हापुर के राजा दत्तोबा पवार की आर्थिक मदद से 31 जनवरी, 1920 को 'मूकनायक' का प्रकाशन प्रारंभ किया। उन्हें किस तरह के कटु विरोध का सामना करना पड़ा, यह इससे जाहिर है कि तत्समय के प्रतिष्ठित समाचारपत्र 'केसरी' ने 'मूकनायक' का प्रकाशन प्रारंभ होने की खबर छापने तक से इंकार कर दिया। ज्ञातव्य है कि उस समय तिलक जीवित थे।

असमानता की भूमि

'मूकनायक' के पहले अंक में डॉ. अम्बेडकर ने अखबार के प्रकाशन के उद्देश्य को सरल भाषा में किंतु अत्यंत प्रभावी व तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होंने लिखा कि भारत असमानताओं की भूमि है। यहां का समाज एक ऐसी बहुमंजिला इमारत की तरह है, जिसमें एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने के लिए न तो कोई सीढ़ी है और न ही दरवाजा। कोई व्यक्ति जिस मंजिल पर जन्म लेता है, उसी पर मृत्यु को प्राप्त होना उसकी नियति होती है। उन्होंने आगे लिखा कि भारतीय समाज के तीन हिस्से हैं – ब्राह्मण, गैर-ब्राह्मण और अछूत। उन्होंने कहा कि उन्हें ऐसे लोगों पर दया आती है जो यह मानते हैं कि पशुओं और निर्जीव पदार्थों में भी ईश्वर का वास है परंतु अपने ही धर्म के लोगों को छूना भी उन्हें मंजूर नहीं होता। उन्होंने इस बात पर अफसोस जाहिर किया कि ब्राह्मणों का लक्ष्य, ज्ञान का प्रसार नहीं बल्कि उस पर अपना एकाधिकार बनाए रखना है। उनकी यह मान्यता थी कि गैर-ब्राह्मण, पिछड़े हुए इसलिए हैं क्योंकि वे न तो शिक्षित हैं और ना ही उनके हाथों में सत्ता है। दमितों को इस चिर गुलामी से मुक्त कराने और गरीबी व अज्ञानता के दलदल से बाहर निकालने के लिए, उनकी इन कमियों को दूर करना होगा और इसके लिए महती प्रयासों की आवश्यकता होगी।

'मूकनायक' के एक अन्य आलेख में कहा गया कि भारत के लिए केवल एक स्वतंत्र देश होना पर्याप्त नहीं है। उसे अपने सभी नागरिकों को धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में बराबरी की गारंटी देनी होगी। उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि हर रहवासी को आगे बढने के लिए अवसर प्राप्त हों और उन्हें यह अवसर उपलब्ध करवाने के लिए सभी जरूरी कदम उठाने होंगे। उन्होंने लिखा कि शायद ही कोई व्यक्ति इतना नीच होगा जो इस तर्क को गलत बताए कि अगर ब्राह्मणों द्वारा ब्रिटिश सरकार की अन्यायपूर्ण सत्ता का विरोध जायज है तो दमित वर्गों का, सत्ता के हस्तांतरण के समय, ब्राह्मणों के शासन का विरोध करना इससे भी सौ गुना जायज है। लेख में जोर देकर यह कहा गया कि अगर ब्रिटिश सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई सुरक्षा समाप्त हो जाए तो जो लोग अछूतों को नीची निगाहों से देखते हैं, वे उन्हें अपने पैरों तले कुचल डालेंगे। एक अन्य लेख में अम्बेडकर ने लिखा कि दमित वर्गों के लिए वह स्वराज, जिसमें उनके मूल अधिकारों की गारंटी न हो, स्वराज नहीं बल्कि दासत्व का एक दूसरा स्वरूप होगा।

'मूकनायक' के जरिये अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय-उन्मुखी जनसंचार के एक नए युग की शुरूआत की। वे अपने अखबार को लंबे समय तक नहीं निकाल सके क्योंकि उनके समक्ष एक अधिक महत्वपूर्ण कार्य था। और वह था दमित वर्गों में शिक्षा का प्रसार, जिससे वे दमनकारी ताकतों के चंगुल से मुक्त हो सकें।

पंखविहीन पक्षी

डॉ. अम्बेडकर ने दबे-कुचले वर्गों के उत्थान के अपने अभियान को आगे बढ़ाने के लिए 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इस संस्था ने अछूतों सहित सभी जातियों की सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक व राजनैतिक समता के लिए कार्य करना शुरू किया। अम्बेडकर को इतने

डॉ. अम्बेडकर एक महान संप्रेषक थे। भारतीय प्रेस के बारे में उनके विचार और पत्रकार बतौर उनका आचरण, आज भी उन लोगों के लिए आदर्श हैं, जो मीडिया का मानव विकास के उपकरण के रूप में उपयोग करना चाहते हैं।

कड़े विरोध का सामना करना पड़ा कि उन्हें लगा कि अपनी बात लोगों तक पहुंचाने के लिए उन्हें किसी माध्यम की आवश्यकता है। उन्हें यह अहसास हुआ कि बिना अखबार के नेता, पंखविहीन पक्षी की तरह है। इसलिए, उन्होंने 3 अप्रैल, 1927 को बंबई से मराठी पाक्षिक 'बहिष्कृत भारत' का प्रकाशन शुरू किया।

डॉ. अम्बेडकर यह अच्छी तरह से समझते थे कि जो लोग सार्वजनिक हित के कार्य करते हैं उनके लिए आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना अतिआवश्यक है। इसलिए अखबार चलाते हुए डॉ. अम्बेडकर ने अपनी वकालत कभी बंद नहीं की। अखबार को चलाने के लिए आर्थिक संसाधन जुटाना तब भी उतना ही कठिन था जितना कि आज है। जो लोग यह तर्क देते थे कि देश के लोग किसी क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए तैयार नहीं हैं, उन्हें जवाब देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि अगर ऐसा है तो फिर वे देश की स्वतंत्रता के लिए क्यों संघर्ष कर रहे हैं, जबकि देश की जनता न तो स्वतंत्रता के लिए तैयार है और न ही उसे पाने के लायक है।

डॉ. अम्बेडकर के निकट सहयोगी धनंजय कीर (डॉ. अम्बेडकर : लाईफ एंड मिशन, 1981) ने अम्बेडकर की 'बहिष्कृत भारत' के संपादक के रूप में भूमिका का वर्णन करते हुए लिखा कि, ''अम्बेडकर ने अपने नए प्रकाशन का इस्तेमाल अपने विचारों को प्रतिपादित करने, अपने लक्ष्यों को परिभाषित करने और अपने आलोचकों को प्रतिउत्तर देने के लिए किया। उन्होंने कहा कि मंदिर और पीने के पानी के स्रोत अछूतों के लिए खुले होने चाहिए क्योंकि वे भी हिंदू हैं। उनके संपादकीय छोटे हुआ करते थे और वे निर्भयतापूर्वक अपनी विशिष्ट शैली में उनमें अपने विचारों को प्रतिपादित करते थे। उन्होंने सरकार से यह मांग की कि वह 'बोल प्रस्ताव' को लागू करे और स्थानीय संस्थाओं के भरोसे न रहे क्योंकि उन पर प्रतिक्रियावादियों का वर्चस्व है, जो कट्टरपंथी, संकीर्ण व पुरानी सोच वाले हैं और दमित वर्गों के हितों के विरोधी हैं। उन्होंने अपने अखबार के जरिए सरकार से यह अपील की कि वो उन लोगों को सजा दे जो इस प्रस्ताव को लागू किए जाने का विरोध कर रहे हैं।''

डॉ. अम्बेडकर अपने इस अखबार को भी आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण लंबे समय तक नहीं चला सके। वे पत्रकारिता के उच्च मानकों से समझौता करने के लिए तैयार नहीं थे। अपने समय के अन्य संपादकों की तरह वे कभी पूंजीवादियों के एजेण्ट नहीं बने। उन्होंने कभी अपने अखबार को धन कमाने का जरिया नहीं बनाया।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने समय में सामाजिक, राजनीतिक व पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया। उन्होंने समाज से बहिष्कृत लोगों की व्यथा को सामने लाकर देश में हलचल पैदा कर दी। अगले कदम के रूप में उन्होंने दमित वर्गों के उत्पीडन की भर्त्सना की और तत्पश्चात इन वर्गों की समानता पाने की महत्वाकांक्षा को स्वर दिया। उनका चौथा कदम था इस आशा का प्रकटीकरण की समानता, स्वतंत्रता व बंधुत्व के आधार पर सभी लोगों का हिंदू समाज में आत्मसात्करण हो।

डॉ. अम्बेडकर एक महान संप्रेषक थे। भारतीय प्रेस के बारे में उनके विचार और पत्रकार बतौर उनका आचरण, आज भी उन लोगों के लिए आदर्श हैं, जो मीडिया का मानव विकास के उपकरण के रूप में उपयोग करना चाहते हैं। उन्होंने लिखा कि ''भारत में पत्रकारिता पहले एक पेशा थी। अब वह एक व्यापार बन गई है। अखबार चलाने वालों को नैतिकता से उतना ही मतलब रहता है जितना कि किसी साबुन बनाने वाले को। पत्रकारिता स्वयं को जनता के जिम्मेदार सलाहकार के रूप में नहीं देखती। भारत में पत्रकार यह नहीं मानते कि बिना किसी प्रयोजन के समाचार देना, निर्भयतापूर्वक उन लोगों की निंदा करना जो गलत रास्ते पर जा रहें हों-फिर चाहे वे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, पूरे समुदाय के हितों की रक्षा करने वाली नीति को प्रतिपादित करना उनका पहला और प्राथमिक कर्तव्य है। व्यक्ति पूजा उनका मुख्य कर्तव्य बन गया है। भारतीय प्रेस में समाचार को सनसनीखेज बनाना, तार्किक विचारों के स्थान पर अतार्किक जुनूनी बातें लिखना और जिम्मेदार लोगों की बुद्धि को जाग्रत करने की बजाए गैर-जिम्मेदार लोगों की भावनाएं भड़काना आम हैं। व्यक्ति पूजा के खातिर देश के हितों की इतनी विवेकहीन बलि इसके पहले कभी नहीं दी गई। व्यक्ति पूजा कभी इतनी अंधी नहीं थी जितनी की वह आज के भारत में है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि इसके कुछ सम्मानित अपवाद हैं परंतु उनकी संख्या बहुत कम है और उनकी आवाज कभी सुनी नहीं जाती।'' ◆

(साथ में दिलीप कुमार, डॉ. गोपाल और एच.एस. शिवराजू)

(डॉ. बी. पी. महेश चन्द्र गुरु मैसूर विश्वविद्यालय के जनसंचार व पत्रकारिता विभाग में प्राध्यापक हैं।)

साभार - फारवर्ड प्रेस

26 जून 2016 का आकाशवाणी द्वारा प्रसारित

'मन की बात' कार्यक्रम में प्रधानमंत्री द्वारा उद्बोधन

मेरे प्यारे देशवासियो, आप सबको नमस्कार। गत वर्ष हमने गर्मी की भयंकर पीड़ा, पानी का अभाव, सूखे की स्थिति, न जाने कितनी-कितनी कसौटियों से गुजरना पड़ा। लेकिन पिछले दो हफ्ते से, अलग-अलग स्थानों से बारिश की खबरें आ रही हैं। बारिश की खबरों के साथ-साथ, एक ताजगी का अहसास भी हो रहा है। आप भी अनुभव करते होंगे और जैसे वैज्ञानिक बता रहे हैं, इस बार वर्षा अच्छी होगी, सर्वदूर होगी और वर्षा ऋतु के पूरे कालखण्ड दरम्यान होगी। ये अपने आप में एक नया उत्साह भरने वाली खबरें हैं। मैं सभी किसान भाइयों को भी अच्छी वर्षा ऋतु की बहुत-बहुत शुभकामनायें देता हूँ।

हमारे देश में जैसे किसान मेहनत करता है, हमारे वैज्ञानिक भी देश को नई ऊंचाइयों पर ले जाने के लिए बहुत सफलताएँ प्राप्त कर रहे हैं। और मेरा तो पहले से मत रहा है कि हमारी नई पीढ़ी वैज्ञानिक बनने के सपने देखे, विज्ञान में रूचि ले, आने वाली पीढ़ियों के लिये कुछ कर गुजरने की इच्छा के साथ हमारी युवा पीढ़ी आगे आए। मैं आज और भी एक खुशी की बात आपसे शेयर करना चाहता हूँ। कल मैं पुणे गया था, स्मार्ट सिटी प्रोजेक्ट की वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में वहाँ कार्यक्रम था और वहाँ मैंने पुणे के कॉलेज ऑफ इंजिनियरिंग के जिन विद्यार्थियों ने स्वयं की मेहनत से, स्वयं उपग्रह बनाया और जिसे 22 जून को प्रक्षेपित किया गया, उनको मिलने के लिए बुलाया था। क्योंकि मेरा मन करता था कि मैं इन मेरे युवा साथियों को देखूं तो सही! उनको मिलूँ तो सही! उनके भीतर जो ऊर्जा है, उत्साह है, उसका मैं भी तो अनुभव करूँ! पिछले कई वर्षों से अनेक विद्यार्थियों ने इस काम में अपना योगदान दिया। ये एकेडमिक सेटेलाइट एक प्रकार से युवा भारत के हौसले की उड़ान का जीता जागता नमूना है। और ये हमारे छात्रों ने बनाया। इन छोटे से

सेटेलाइट के पीछे जो सपने हैं, वो बहुत बड़े हैं। उसकी जो उड़ान है, बहुत ऊँची है और उसकी जो मेहनत है, वो बहुत गहरी है। जैसे पुणे के छात्रों ने किया, वैसे ही तमिलनाडु, चेन्नई की सत्यभामा यूनिवर्सिटी के स्टूडेंट द्वारा भी एक सेटेलाइट बनाया गया और वो सत्यभामासेट को भी प्रक्षेपित किया गया। हम तो बचपन से ये बातें सुनते आये हैं और हर बालक के मन में आसमान को छूने और कुछ तारों को मुठ्ठी में कैद करने की ख्वाहिश हमेशा रहती है और इस लिहाज से इसरो द्वारा भेजे गये, छात्रों के द्वारा बनाये हुए दोनों सेटेलाइट मेरी दृष्टि से बहुत अहम् हैं, बेहद खास हैं। ये सभी छात्र बधाई के पात्र हैं। मैं देशवासियों को भी बहुत-बहुत बधाई देना चाहता हूँ कि 22 जून को इसरो के हमारे वैज्ञानिकों ने एक साथ 20 सेटेलाइट अन्तरिक्ष में भेजकर अपने ही पुराने रेकॉर्डो को तोड़ करके एक नया रिकॉर्ड बना दिया और ये भी खुशी की बात है कि भारत में ये जो 20 सेटेलाइट लांच किये गए, उसमें से 17 सेटेलाइट अन्य देशों के हैं। अमेरिका सहित कई देशों के सेटेलाइट लांच करने का काम भारत की धरती से, भारत के वैज्ञानिकों के द्वारा हुआ और इनके साथ वही दो सेटेलाइट, जो हमारे छात्रों ने बनाये थे, वे भी अन्तरिक्ष में पहुँचे। और ये भी विशेषता है कि इसरो ने कम लागत और सफलता की गारंटी के चलते दुनिया में खास जगह बना ली है और उसके कारण विश्व के कई देश लांचिंग के लिए आज भारत की तरफ नजर कर रहे हैं।

मेरे प्यारे देशवासियो, 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' ये बात अब भारत में जन-जन के मन की बात बन गयी है। लेकिन कुछ घटनायें उसमें एक नई जिंदगी ले आती हैं, नये प्राण भर देती हैं। इस बार 10वीं-12वीं की परीक्षाओं के जो नतीजे आये हैं, हमारी बेटियाँ मैदान मार रही हैं और गर्व होता है। और मेरे देशवासियों हम सब गर्व करें, ऐसी एक और महत्वपूर्ण बात - 18 जून को भारतीय वायु सेना में पहली बार फर्स्ट बैच ऑफ वूमेन फाइटर पाइलट इन द इंडियन एयर फोर्स, भारतीय वायुसेना में महिला लड़ाकू पाइलट की पहली बैच, ये सुनते ही रौंगटे खड़े हो जाते हैं न! कितना गर्व होता है कि हमारे तीन फ्लाइंग ऑफिसर बेटियाँ अवनि चतुर्वेदी, भावना कंठ और मोहना, जिन्होंने हमें गौरव दिलाया है। इन तीन बेटियों की खास बात है। फ्लाइंग ऑफिसर अवनि मध्य प्रदेश के रीवा से हैं, फ्लाइंग ऑफिसर भावना बिहार में बेगूसराय से हैं और फ्लाइंग ऑफिसर मोहना गुजरात के बड़ोदरा से हैं। आपने देखा होगा कि तीनों बेटियाँ हिन्दुस्तान के मेट्रो शहर से नहीं हैं। वे अपने-अपने राज्यों की राजधानी से भी नहीं हैं। ये छोटे शहरों से होने के बावजूद भी इन्होंने आसमान जैसे ऊंचे सपने देखे और उसे पूरा करके दिखाया। मैं अवनि, मोहना, भावना इन तीनों बेटियों को और उनके माँ-बाप को भी हृदय से बहुत-बहुत शुभकामनायें देता हूँ।

मेरे प्यारे देशवासियो, कुछ दिन पूर्व पूरे विश्व ने 21 जून को 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' की वर्षगाँठ पर भव्य कार्यक्रम किये। एक भारतीय के नाते पूरा विश्व जब योग से जुड़ता है, तब हम अहसास करते हैं, जैसे दुनिया हमारे कल, आज और कल से जुड़ रही है। विश्व के साथ हमारा एक अनोखा नाता बन रहा है। भारत में भी एक लाख से अधिक स्थानों पर बहुत उमंग और उत्साह के साथ, भांति-भांति के रंग-रूप के साथ रंगारंग माहौल में अन्तर्राष्ट्रीय योग-पर्व मनाया गया। मुझे भी चंडीगढ़ में हजारों योग प्रेमियों के साथ उनके बीच योग करने का अवसर मिला। आबाल-वृद्ध सबका उत्साह देखने लायक था। आपने देखा होगा, पिछले सप्ताह भारत सरकार ने इस अन्तर्राष्ट्रीय योग-पर्व के निमित्त ही 'सूर्य नमस्कार' की डाक टिकट भी जारी की है। इस बार विश्व में 'योगा-डे' के साथ-साथ दो चीजों पर लोगों का विशेष ध्यान गया। एक तो अमेरिका के न्यूयार्क शहर में जहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ की बिल्डिंग है, उस बिल्डिंग के ऊपर योगासन की भिन्न-भिन्न कृतियों का विशेष प्रोजेक्शन किया गया और वहाँ आते-जाते लोग उसकी फोटो लेते रहते थे और दुनिया भर में वो फोटो प्रचलित हो गयी। ये बातें किस भारतीय को गौरव नहीं दिलाएँगी - ये बताइये न! और भी एक बात हुई, टेक्नोलॉजी अपना काम कर रही है। सोशल मीडिया की अपनी एक पहचान बन गयी है और इस बार योग में ट्वीटर ने योगा मगेज के साथ सेलेब्रेशन का एक हल्का-फुल्का प्रयोग भी किया। हैशटैग 'योग-डे' टाइप करते ही योगा वाले मगेज का चित्र हमारे मोबाइल फोन पर आ जाता था और दुनिया भर में वो प्रचलित हो गया। योग का मतलब ही होता है जोड़ना। योग में पूरे जगत को जोड़ने की ताकत है। बस, जरूरत है, हम योग से जुड़ जाएँ।

मध्य प्रदेश के सतना से स्वाति श्रीवास्तव ने इस योग दिवस के बाद मुझे एक टेलीफोन किया और उसने मुझे एक मैसेज दिया है आप सबके लिए, लेकिन लगता है, शायद वो ज्यादा मेरे लिए है : -

"मैं चाहती हूँ कि मेरा पूरा देश स्वस्थ रहे, उसका गरीब व्यक्ति भी निरोग रहे। इसके लिए मैं चाहती हूँ कि दूरदर्शन में हर एक सीरियल के बीच में जो सारे एड(एडवरटाइजमेंट) आते हैं, उसमें से किसी एक एड में योग के बारे में बताएँ। उसे कैसे करते हैं? उसके क्या लाभ होते हैं?" स्वाति जी, आपका सुझाव तो अच्छा है, लेकिन अगर आप थोड़ा ध्यान से देखोगे, तो आपके ध्यान

में आएगा; न सिर्फ दूरदर्शन इन दिनों भारत और भारत बाहर, टी.वी. मीडिया के जगत में प्रतिदिन योग के प्रचार में भारत के और दुनिया के सभी टी.वी. चैनल कोई-न-कोई अपना योगदान दे रहे हैं। हर एक के अलग-अलग समय हैं। लेकिन अगर आप ध्यान से देखोगी, तो योग के विषय में जानकारी पाने के लिए ये सब हो ही रहा है। और मैंने तो देखा है, दुनिया के कुछ देश ऐसे हैं कि जहाँ चौबीसों घंटे योग को समर्पित चैनल भी चलती हैं। और आपको पता होगा कि मैं जून महीने में 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' निमित्त प्रतिदिन ट्वीटर और फेसबुक के माध्यम से हर दिन एक नये आसन का वीडियो शेयर करता था। अगर आप आयुष मंत्रालय की वेबसाइट पर जायेंगे, तो 40-45 मिनट का एक-के-बाद एक शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के लिए किस प्रकार के योग कर सकते हैं, हर आयु के लोग कर सकते हैं, ऐसे सरल योगों का, योग का एक अच्छा वीडियो वेबसाइट पर उपलब्ध है। मैं आपको भी और आपके माध्यम से सभी योग के जिज्ञासुओं को कहूँगा कि वे जरूर इसके साथ जुड़ें।

मैंने इस बार एक आवाहन किया है कि जब हम कहते हैं कि योग रोग मुक्ति का माध्यम है, तो क्यों न हम सब मिल कर के जितने भी स्कूल ऑफ थॉट्स हैं योग के सम्बन्ध में; हर एक के अपने-अपने तरीके हैं, हर एक के अपने-अपने प्रायोरिटिज हैं, हर एक के अपने अलग-अलग अनुभव हैं, लेकिन सब का अंतिम लक्ष्य एक है। मैं इन जितने प्रकार के योग की विधायें चल रही हैं, जितने प्रकार के योग के इंस्टीट्यूसंस चल रही हैं, जितने प्रकार के योग गुरु हैं, सबसे मैंने आग्रह किया है कि क्या हम पूरा ये वर्ष मधुमेह के खिलाफ, डाइबीटीज के खिलाफ, योग के द्वारा एक सफल अभियान चला सकते हैं क्या? क्या योग से डाइबीटीज को कंट्रोल किया जा सकता है? कुछ लोगों को उसमें सफलता मिली है। हर-एक ने अपने-अपने तरीके से रास्ते खोजे हैं और हम जानते हैं कि डाइबीटीज का वैसे कोई उपचार नहीं बताता है। दवाइयाँ ले कर के गुजारा करना पड़ता है और डाइबीटीज ऐसा राज-रोग है कि जो बाकी सब रोगों का यजमान बन जाता है। भांति-भांति बीमारियों का वो एंट्रंस बन जाता है और इसलिए हर कोई डाइबीटीज से बचना चाहता है। बहुत लोगों ने इस दिशा में काम भी किया है। कुछ डाइबीटीज पेशेंट ने भी अपनी यौगिक प्रैक्टिस के द्वारा उसको नियंत्रित किया है। क्यों न हम अपने अनुभवों को लोगों के बीच शेयर करें। इसको एक मोमेंटम दें। साल भर एक माहौल बनाएँ। मैं आपसे आग्रह करता हूँ कि 'हैसटैग योगा फाइट डाइबीटीज', मैं फिर से कह देता हूँ 'हैसटैग योगा फाइट डाइबीटीज' को युज कर अपने अनुभव सोशल मीडिया पर शेयर करें या मुझे नरेंद्रमोदी ऐप पर भेजें। देखें तो सही, किस के क्या अनुभव हैं, प्रयास तो करें। मैं आपको निमंत्रित करता हूँ "हैसटैग योगा फाइट डाइबीटीज" पर अपने अनुभवों को शेयर करने के लिए। मेरे प्यारे देशवासियो, कभी-कभी मेरे 'मन की बात' की बड़ी मजाक भी उड़ाई जाती है, बहुत आलोचना भी की जाती है, लेकिन ये इसलिये संभव है, क्योंकि हम लोग लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्ध हैं। लेकिन आज जब 26 जून, मैं आपसे बात कर रहा हूँ तब, खासकर के नई पीढ़ी को कहना चाहता हूँ कि जिस लोकतंत्र का हम गर्व करते हैं, जिस लोकतंत्र ने हमें एक बहुत बड़ी ताकत दी है, हर नागरिक को बड़ी ताकत दी है; लेकिन 26 जून, 1975 वो भी एक दिन था। 25 जून की रात और 26 जून की सुबह हिंदुस्तान के लोकतंत्र के लिए एक ऐसी काली रात थी कि भारत में आपातकाल लागू किया गया। नागरिकों के सारे अधिकारों को खत्म कर दिया गया। देश को जेलखाना बना दिया गया। जयप्रकाश नारायण समेत देश के लाखों लोगों को, हजारों नेताओं को, अनेक संगठनों को, जेल के सलाखों के पीछे धकेल दिया गया। उस भयंकर काली घटना पर अनेक किताबें लिखी गई हैं। अनेक चर्चायें भी हुई हैं, लेकिन आज जब मैं 26 जून को आपसे बात कर रहा हूँ, तब इस बात को हम न भूलें कि हमारी ताकत लोकतंत्र है, हमारी ताकत

मेरे प्यारे देशवासियों, कभी-कभी मेरे 'मन की बात' की बड़ी मजाक भी उड़ाई जाती है, बहुत आलोचना भी की जाती है, लेकिन ये इसलिये संभव है, क्योंकि हम लोग लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्ध हैं।

आप अपनी अघोषित आय को घोषित कीजिये। सरकार ने 30 सितम्बर तक अघोषित आय को घोषित करने के लिए विशेष सुविधा देश के सामने प्रस्तुत की है। जुर्माना देकर के हम अनेक प्रकार के बोझ से मुक्त हो सकते हैं। मैंने ये भी वादा किया है कि स्वेच्छा से जो अपने मिल्कियत के सम्बन्ध में, अघोषित आय के सम्बन्ध में सरकार को अपनी जानकारी दे देंगे, तो सरकार किसी भी प्रकार की जांच नहीं करेगी।

लोक-शक्ति है, हमारी ताकत एक-एक नागरिक है। इस प्रतिबद्धता को हमें आगे बढ़ाना है, और ताकतवर बनाना है और भारत के लोगों की ये ताकत है कि उन्होंने लोकतंत्र को जी के दिखाया है। अखबारों पर ताले लगे हों, रेडियो एक ही भाषा बोलता हो, लेकिन दूसरी तरफ देश की जनता मौका पड़ते ही लोकतांत्रिक शक्तियों का परिचय करवा दे। ये बातें किसी देश के लिए बहुत बड़ी शक्ति का रूप हैं। भारत के सामान्य मानव की लोकतान्त्रिक शक्ति का उत्तम उदाहरण आपातकाल में प्रस्तुत हुआ है और लोकतान्त्रिक शक्ति का वो परिचय बार-बार देश को याद कराते रहना चाहिए। लोगों की शक्ति का एहसास करते रहना चाहिए और लोगों की शक्ति को बल मिले, इस प्रकार की हमारी हर प्रकार से प्रवृत्ति रहनी चाहिए और लोगों को जोड़ना चाहिए। मैं हमेशा कहता हूँ कि भाई, लोकतंत्र का मतलब ये नहीं होता कि लोग वोट करें और पाँच साल के लिए आपको देश चलाने का कांट्रैक्ट दे दें। जी नहीं, वोट करना तो लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण है, लेकिन और भी बहुत सारे पहलू हैं और सबसे बड़ा पहलू है जन-भागीदारी। जनता का मिजाज, जनता की सोच, और सरकारें जितनी जनता से ज्यादा जुड़ती हैं, उतनी देश की ताकत ज्यादा बढ़ती है। जनता और सरकारों के बीच की खाई ने ही हमारी बर्बादी को बल दिया है। मेरी हमेशा कोशिश है कि जन-भागीदारी से ही देश आगे बढ़ना चाहिए।

अभी-अभी जब मेरी सरकार के 2 साल पूरे हुए, तो कुछ आधुनिक विचार वाले नौजवानों ने मुझे सुझाव दिया कि आप इतनी बड़ी लोकतंत्र की बातें करते हैं, तो क्यों न आप अपनी सरकार का मूल्यांकन लोगों से करवाएँ। वैसे एक प्रकार से उनका चुनौती का ही स्वर था, सुझाव का भी स्वर था। लेकिन उन्होंने मेरे मन को झकझोर दिया। मैंने कुछ अपने वरिष्ठ साथियों के बीच में ये विषय रखा, तो प्रथम प्रतिक्रिया तो ऐसा ही था कि नहीं-नहीं जी साहब, ये आप क्या करने जा रहे हो? आज तो टेक्नोलॉजी इतनी बदल चुकी है कि अगर कोई इकट्ठे हो जाये, कोई गुट बन जाये और टेक्नोलॉजी का दुरूपयोग कर गये, तो पता नहीं सर्वे कहाँ से कहाँ ले जाएंगे। उन्होंने चिंता जाहिर की। लेकिन मुझे लगा, नहीं-नहीं, रिस्क लेना चाहिए, कोशिश करनी चाहिए। देखें, क्या होता है, और मेरे प्यारे देशवासियो, खुशी की बात है कि जब मैंने टेक्नोलॉजी के माध्यम से अलग-अलग भाषाओं का उपयोग करते हुए जनता को मेरी सरकार का मूल्यांकन करने के लिए आह्वान किया। चुनाव के बाद भी तो बहुत सर्वे होते हैं, चुनाव के दरम्यान भी सर्वे होते हैं, कभी-कभी बीच में कुछ इस्यु पर भी सर्वे होते हैं, लोकप्रियता पर सर्वे होते हैं, लेकिन उसकी सैंपल साइज ज्यादा नहीं होती है। आप में से बहुत लोगों ने 'रेट माई गवर्नमेंट-माईगोवडॉटइन' पर अपना ओपीनियन दिया है। वैसे तो लाखों लोगों ने इसमें रूचि दिखाई लेकिन 3 लाख लोगों ने एक-एक सवाल का जवाब देने के लिए मेहनत की है, काफी समय निकाला है। मैं उन 3 लाख लोगों का बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने स्वयं सक्रियता दिखाई, सरकार का मूल्यांकन किया। मैं नतीजों की चर्चा नहीं करता हूँ, वो हमारे मीडिया के लोग जरूर करेंगे। लेकिन एक अच्छा प्रयोग था, इतना तो मैं जरूर कहूँगा और मेरे लिए भी खुशी की बात थी कि हिंदुस्तान की सभी भाषाएँ बोलने वाले, हर कोने में रहने वाले, हर प्रकार के बैकग्राउंड वाले लोगों ने इसमें हिस्सा लिया और सबसे बड़ी मेरे लिए अचरज तो है ही है कि भारत सरकार की जो ग्रामीण रोजगार की योजना चलती है, उस योजना की जो वेबसाइट है, उस पोर्टल पर सब से ज्यादा लोगों ने बढ़-चढ़ कर के हिस्सा लिया। इसका मतलब कि ग्रामीण जीवन से जुड़े, गरीबी से जुड़े हुए लोगों का इसमें बहुत बड़ा सक्रिय योगदान था, ऐसा मैं प्राथमिक अनुमान लगाता हूँ। ये मुझे और ज्यादा अच्छा लगा। तो आपने

देखा, एक वो भी दिन था, जब कुछ वर्ष पहले 26 जून को जनता की आवाज दबोच दी गई थी और ये भी वक्त है कि जब जनता खुद तय करती है, बीच-बचाव तय करती है कि देखें तो सही, सरकार ठीक कर रही है कि गलत कर रही है, अच्छा कर रही है, बुरा कर रही है। यही तो लोकतंत्र की ताकत है।

मेरे प्यारे देशवासियो, आज मैं एक बात के लिए विशेष आग्रह करना चाहता हूँ। एक जमाना था, जब टैक्सेज इतने व्यापक हुआ करते थे कि टैक्स में चोरी करना स्वभाव बन गया था। एक जमाना था, विदेश की चीजों को लाने के सम्बन्ध में कई रिस्ट्रिक्शन थे, तो स्मगलिंग भी उतना ही बढ़ जाता था, लेकिन धीरे-धीरे वक्त बदलता गया है। अब करदाता को सरकार की कर-व्यवस्था से जोड़ना अधिक मुश्किल काम नहीं है, लेकिन फिर भी पुरानी आदतें जाती नहीं हैं। एक पीढ़ी को अभी भी लगता है कि भाई, सरकार से दूर रहना ज्यादा अच्छा है। मैं आज आपसे आग्रह करना चाहता हूँ कि नियमों से भाग कर के हम अपने सुख-चौन गवाँ देते हैं। कोई भी छोटा-मोटा व्यक्ति हमें परेशान कर सकता है। हम ऐसा क्यों होने दें? क्यों न हम स्वयं अपनी आय के सम्बन्ध में, अपनी संपत्ति के सम्बन्ध में, सरकार को अपना सही-सही ब्यौरा दे दें। एक बार पुराना जो कुछ भी पड़ा हो, उससे मुक्त हो जाइए। इस बोझ से मुक्त होने के लिए मैं देशवासियो को आग्रह करता हूँ। जिन लोगों के पास अनडिसक्लोज्ड इनकम है, अघोषित आय है, उनके लिए भारत सरकार ने एक मौका दिया है कि आप अपनी अघोषित आय को घोषित कीजिये। सरकार ने 30 सितम्बर तक अघोषित आय को घोषित करने के लिए विशेष सुविधा देश के सामने प्रस्तुत की है। जुर्माना देकर के हम अनेक प्रकार के बोझ से मुक्त हो सकते हैं। मैंने ये भी वादा किया है कि स्वेच्छा से जो अपने मिल्कियत के सम्बन्ध में, अघोषित आय के सम्बन्ध में सरकार को अपनी जानकारी दे देंगे, तो सरकार किसी भी प्रकार की जांच नहीं करेगी। इतना धन कहाँ से आया, कैसे आया - एक बार भी पूछा नहीं जाएगा और इसलिए मैं कहता हूँ कि अच्छा मौका है कि आप एक पारदर्शी व्यवस्था का हिस्सा बन जाइए। साथ-साथ मैं देशवासियों को कहना भी चाहता हूँ कि 30 सितम्बर तक की ये योजना है, इसको एक आखिरी मौका मान लीजिए। मैंने बीच में हमारे सांसदों को भी कहा था कि 30 सितम्बर के बाद अगर किसी नागरिक को तकलीफ हो, जो सरकारी नियमों से जुड़ना नही चाहता है, तो उनकी कोई मदद नही हो सकेगी। मैं देशवासियों को भी कहना चाहता हूँ कि हम 30 सितम्बर के बाद ऐसा कुछ भी ना हो, जिससे आपको कोई तकलीफ हो, इसलिए भी मैं कहता हूँ, अच्छा होगा 30 सितम्बर के पहले आप इस व्यवस्था का लाभ उठाएँ और 30 सितम्बर के बाद संभावित तकलीफों से अपने-आप को बचा लें।

मेरे देशवासियो, आज ये बात मुझे 'मन की बात' में इसलिए करनी पड़ी कि अभी मैंने हमारे जो रेवेन्यू विभाग -इनकम टैक्स, कस्टम, एक्साइज - उनके सभी अधिकारियों के साथ मैंने एक दो-दिन का ज्ञान-संगम किया, बहुत विचार-विमर्श किया और मैंने उनको साफ-साफ शब्दो में कहा है कि हम नागरिकों को चोर न मानें। हम नागरिकों पर भरोसा करें, विश्वास करें, हैंड-होल्डिंग करें। अगर वे नियमों से जुड़ना चाहते हैं, उनको प्रोत्साहित करके प्यार से साथ में ले आएँ। एक विश्वास का माहौल पैदा करना आवश्यक है। हमारे आचरण से हमें बदलाव लाना होगा। टैक्सपेयर को विश्वास दिलाना होगा। मैंने बहुत आग्रह से इन बातों को उनसे कहा है और मैं देख रहा था कि उनको भी लग रहा है कि आज जब देश आगे बढ़ रहा है, तो हम सबने योगदान देना चाहिए। और इस ज्ञान-संगम में जब मैं जानकारियाँ ले रहा था, तो एक जानकारी मैं आपको भी बताना चाहता हूँ। आप में से कोई इस बात पर विश्वास नहीं करेगा कि सवा-सौ करोड़ के देश में सिर्फ और सिर्फ डेढ़ लाख लोग ही ऐसे हैं, जिनकी टैक्सएबल इनकम पचास लाख रूपये से ज्यादा है। ये बात किसी के गले उतरने वाली नहीं है। पचास लाख से ज्यादा टैक्सएबल इनकम वाले लोग बड़े-बड़े शहरो में लाखों की तादाद मे दिखते हैं। एक-एक करोड़, दो-दो करोड़ के बंग्लो देखते ही पता चलता है कि ये कैसे पचास लाख से कम आय के दायरे में हो सकते हैं। इसका मतलब कुछ तो गड़बड़ है, इस स्थिति को बदलना है और 30 सितम्बर के पहले बदलना है। सरकार को कोई कठोर कदम उठाने से पहले जनता-जनार्दन को अवसर देना चाहिए और इसलिए मेरे प्यारे भाइयो-बहनो, अघोषित आय को घोषित करने का एक स्वर्णिम अवसर है। दूसरे प्रकार से, 30 सितम्बर के बाद होने वाले संकटों से मुक्ति का एक मार्ग है। मैं देश की भलाई के लिये, देश के गरीबों के कल्याण के लिये आपको इस काम में आने के लिए आग्रह करता हूँ और मैं नही चाहता हूँ कि 30 सितम्बर के बाद आपको कोई तकलीफ हो।

मेरे प्यारे देशवासियो, इस देश का सामान्य मानव देश के लिए बहुत-कुछ करने के लिए अवसर खोजता रहता है। जब मैंने लोगों से कहा - रसोई गैस की सब्सिडी छोड़ दीजिये, इस देश के एक करोड़ से ज्यादा परिवारों ने स्वेच्छा से सब्सिडी छोड़ दी। मैं खास करके जिनके पास अघोषित आय है, उनके लिए एक खास उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

> हमने आपकी प्रेरणा से अपने विद्यालय में वर्षा ऋतु शुरू होने से पहले ही 4 फीट के छोटे-छोटे ढाई-सौ गड्ढे खेल के मैदान के किनारे-किनारे बना दिए थे, ताकि वर्षा जल उसमें समा सके। इस प्रक्रिया में खेल का मैदान भी खराब नहीं हुआ, बच्चों के डूबने का खतरा भी नहीं हुआ और करोड़ों लीटर पानी मैदान का हमने वर्षा जल सब बचाया है।
>
> – संतोष नेगी, गढ़वाल

मैं कल स्मार्ट सिटी के कार्यक्रम के निमित्त पुणे जब गया था, तो वहाँ मुझे श्रीमान चन्द्रकान्त दामोदर कुलकर्णी और उनके परिवारजनों से मिलने का सौभाग्य मिला। मैंने उनको खास मिलने के लिए बुलाया था और कारण क्या है, जिसने कभी भी कर चोरी की होगी, उनको मेरी बात शायद प्रेरणा दे या ना दे, लेकिन श्रीमान चन्द्रकान्त कुलकर्णी की बात तो जरूर प्रेरणा देगी। आप जानते हैं, क्या कारण है? ये चन्द्रकान्त कुलकर्णी जी एक सामान्य मध्यम-वर्गीय परिवार के व्यक्ति हैं। सरकार में नौकरी करते थे, रिटायर हो गए, 16 हजार रुपया उनको पेंशन मिलती है।

और मेरे प्यारे देशवासियो, आपको ताज्जुब होगा और जो कर-चोरी करने की आदत रखते हैं, उनको तो बड़ा सदमा लगेगा कि ये चन्द्रकान्त जी कुलकर्णी हैं, जिन्हें सिर्फ 16 हजार रूपये का पेंशन मिलता है, लेकिन कुछ समय पहले उन्होंने मुझे चिट्ठी लिखी और कहा था कि मैं मेरे 16 हजार रुपये के पेंशन में से हर महीने 5 हजार रुपया स्वच्छता अभियान के लिए डोनेट करना चाहता हूँ और इतना ही नहीं, उन्होंने मुझे 52 चेक, पोस्ट-डेटेड, जो कि हर महीना एक-एक चेक की डेट है, चेक भेज दिए हैं। जिस देश का एक सरकारी मुलाजिम निवृत्ति के बाद सिर्फ 16 हजार के पेंशन में से 5 हजार रुपया स्वच्छता के अभियान के लिए दे देता हो, इस देश में कर चोरी करने का हमें हक नहीं बनता है। चन्द्रकान्त कुलकर्णी से बड़ा कोई हमारी प्रेरणा का कारण नहीं हो सकता है। और स्वच्छता अभियान से जुड़े हुये लोगों के लिए भी चन्द्रकान्त कुलकर्णी से बड़ा उत्तम उदाहरण नहीं हो सकता है। मैंने चन्द्रकान्त जी को रूबरू बुलाया, उनसे मिला, मेरे मन को उनका जीवन छू गया। उस परिवार को मैं बधाई देता हूँ और ऐसे तो अनगिनत लोग होंगे, शायद हो सकता है, मेरे पास उनकी जानकारी न हो, लेकिन यही तो लोग हैं, यही तो लोक-शक्ति है, यही तो ताकत है। 16 हजार की पेशन वाला व्यक्ति, दो लाख साठ हजार के चेक एडवांस में मुझे भेज दे, क्या ये छोटी बात है क्या? आओ, हम भी अपने मन को जरा टटोलें, हम भी सोचें कि सरकार ने हमारी आय को घोषित करने के लिये अवसर दिया है, हम भी चन्द्रकान्त जी को याद करके, हम भी जुड़ जाएँ।

मेरे प्यारे देशवासियो, उत्तराखण्ड के पौड़ी गढ़वाल से संतोष नेगी जी ने फोन करके अपना एक अनुभव शेयर किया है। जल संचय की बात पर उन्होंने मुझे संदेश दिया है। उनका ये अनुभव देशवासियो, आपको भी काम आ सकता है: –

"हमने आपकी प्रेरणा से अपने विद्यालय में वर्षा जल ऋतु शुरू होने से पहले ही 4 फीट के छोटे-छोटे ढाई-सौ गड्ढे खेल के मैदान के किनारे-किनारे बना दिए थे, ताकि वर्षा जल उसमें समा सके। इस प्रक्रिया में खेल का मैदान भी खराब नहीं हुआ, बच्चों के डूबने का खतरा भी नहीं हुआ और करोड़ों लीटर पानी मैदान का हमने वर्षा जल सब बचाया है।"

संतोष जी, मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ कि आपने मुझे ये संदेश दिया और पौड़ी गढ़वाल, पहाड़ी इलाका और वहाँ भी आपने काम किया, आप बधाई के पात्र हैं। और मुझे विश्वास है कि देशवासी भी बारिश का तो मजा जरूर लें, लेकिन ये परमात्मा का दिया हुआ प्रसाद है, ये अपरंपार संपत्ति है। एक-एक बूँद जल का बचाने के लिये हम कुछ-न-कुछ प्रयास करें। गाँव का पानी गाँव में, शहर का पानी शहर में हम कैसे रोक लें? ये पृथ्वी माता को फिर से एक बार रिचार्ज करने के लिये हम उस पानी को फिर से जमीन में वापस कैसे भेजें? जल है, तभी तो कल है, जल ही तो जीवन का आधार है। पूरे देश में एक माहौल तो बना है, पिछले दिनों हर राज्य में, जल संचय के अनेक प्रकल्प किये हैं। लेकिन, अब जब जल आया है, तो देखिये, कहीं चला तो न जाये। जितनी चिंता जीवन को बचाने की है, उतनी ही चिंता जल बचाने की होनी चाहिये।

मेरे प्यारे देशवासियो, आप तो जानते हैं, उन्नीस सौ बाईस नम्बर अब तो आपके याददाश्त का हिस्सा बन गया है। वन नाइन टू टू, उन्नीस सौ बाईस। ये उन्नीस सौ बाईस ऐसा नंबर है, जिस पर अगर आप मिस्ड कॉल करें तो आप 'मन की बात' को अपनी पसंदगी की भाषा में सुन सकते हैं। अपने समय के अनुसार, अपनी भाषा में, मन की बात सुन करके देश की विकास यात्रा में योगदान देने का आप भी मन बना लें।

सभी देशवासियो को बहुत-बहुत नमस्कार। धन्यवाद। ◆

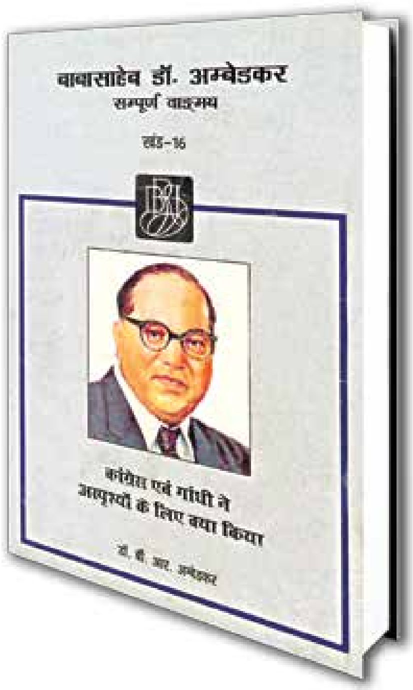

कांग्रेस एवं गांधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया?

■ डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

> "सरकार का फैसला 23 जनवरी 1933 को घोषित किया गया। लार्ड विलिंगटन ने मद्रास कौंसिल में डा. सुब्बाराव के मंदिर प्रवेश विधेयक पर स्वीकृति देने से इंकार कर दिया। परंतु उन्होंने मद्रास असेंबली में श्री रंगा अय्यर को अस्पृश्यता निवारण विधेयक के पेश करने की अनुमति दे दी।"

V

इस प्रकार गुरूवयूर मंदिर का अध्याय समाप्त हुआ। अब मैं दूसरी योजना पर आता हूं, जो मंदिर प्रवेश का कानून बनाने के विषय में है। बहुत से विधेयकों में से केंद्रीय सभा में श्री रंगा अय्यर द्वारा लाए गए विधेयक पर विचार किया गया। अन्य सभी विधेयक रोक दिए गए। विधेयक के आरंभ में ही तूफान खड़ा हो गया। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के अनुसार कोई भी विधेयक जिससे धर्म, परंपरा और प्रचलित प्रथाएं प्रभावित होती हों, सदन में उस समय में उस समय तक पेश नहीं किया जा सकता, जब तक उस पर वायसराय की पूर्व अनुमति न ले ली जाए। जब इस प्रकार की अनुमति के लिए विधेयक वायसराय के पास भेजा गया, तब यह खबर उड़ा दी गई कि वायसराय विधेयक पर अनुमति देने से इंकार कर रहे हैं और इस प्रकार एक हंगामा खड़ा हो गया। श्री गांधी ऐसी खबरों से उत्तेजित हो उठे और उन्होंने 21 जनवरी 1933 को प्रेस को छपने के लिए इस प्रकार बयान दिया-

''यदि वायसराय के फैसले के बारे में पहले ही जानकारी है, तो मैं कहूंगा कि यह बहुत बड़ी दुखद बात है। मैं स्पष्टत: इस मत को अस्वीकार करता हूं कि इन बातों के पीछे कोई राजनीतिक इरादा है। यदि न्यायालय के फैसलों से संदेहास्पद प्रथाएं कानूनी रूप धारण न कर लेती तो किसी विधेयक की कोई आवश्यकता नहीं थी। मैं स्वयं राज्य द्वारा धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप को एक असहनीय दोष मानता हूं। परंतु यहां पर विधेयक कानूनी अड़चन को दूर करने के लिए लोकप्रिय मुद्दों पर आधारित होने के कारण नितांत आवश्यक हो गया है। जहां तक मैं समझता हूं, दलों के बीच परस्पर विरोधी विचार होते हुए भी टकराव का कोई प्रश्न नहीं उठता।''

सरकार का फैसला 23 जनवरी 1933 को घोषित किया गया। लार्ड विलिंगटन ने मद्रास कौंसिल में डा. सुब्बारायन के मंदिर प्रवेश

जब तक कि प्रस्तावों के प्रत्येक पहलू की पूरी तरह जांच न कर ली जाए। यह जांच केवल असेंबली में ही नहीं वरन् उसके बाहर उन लोगों से भी हो, जो इससे प्रभावित होंगे। यह शर्त तभी पूरी हो सकती है जब उस विधेयक को व्यापक रूप से उस पर जनता की राय जानने के लिए परिचालित किया जाए। यह भी समझ लेना चाहिए कि मंदिर प्रवेश से संबंधित विधेयक केंद्रीय विधानमंडल में पेश होने की स्वीकृति किसी भी प्रकार से सरकार की प्रतिबद्धता नहीं कही जा सकती।

विधेयक पर स्वीकृति देने से इंकार कर दिया। परंतु उन्होंने मद्रास असेंबली में श्री रंगा अय्यर को अस्पृश्यता निवारण विधेयक के पेश करने की अनुमति दे दी। यह तय करने के लिए कि क्या रूख अपनाना चाहिए, पहले सरकार ने हिंदुओं के विचार जानने की आवश्यकता पर बल दिया। घोषणा में आगे कहा गया कि गर्वनर जनरल और भारत सरकार ने यह स्पष्ट कर देने की इच्छा की है कि यह आवश्यक है कि किसी ऐसी बात पर विचार तब तक न किया जाए, जब तक कि प्रस्तावों के प्रत्येक पहलू की पूरी तरह जांच न कर ली जाए। यह जांच केवल असेंबली में ही नहीं वरन् उसके बाहर उन लोगों से भी हो, जो इससे प्रभावित होंगे। यह शर्त तभी पूरी हो सकती है जब उस विधेयक को व्यापक रूप से उस पर जनता की राय जानने के लिए परिचालित किया जाए। यह भी समझ लेना चाहिए कि मंदिर प्रवेश से संबंधित विधेयक केंद्रीय विधानमंडल में पेश होने की स्वीकृति किसी भी प्रकार से सरकार की प्रतिबद्धता नहीं कही जा सकती। दूसरे ही दिन श्री गांधी ने एक बयान इस प्रकार जारी किया।

‘‘मैं इसे हरि इच्छा मानता हूं। वह हर समय मेरी परीक्षा लेना चाहता है। अखिल भारतीय विधेयक को दी गई स्वीकृति हिंदू धर्म तथा सुधारकों के लिए अनजाने में दी गई चुनौती है। यदि सुधारक अपने आप में सच्चा है तो हिंदू धर्म अपनी रक्षा स्वयं कर लेगा। इस प्रकार सरकारी फैसले को हरि इच्छा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इससे यह बात स्वष्ट हो जाती है तथा इससे भारत और संसार को समझ जाना चाहिए कि भारत में अब नैतिक संघर्ष प्रबलता से चल रहा है। सनातनी हिंदू जो चाहे फैसला करें, मंदिर प्रवेश का आंदोलन धुर दक्षिण में गुरूवयूर से उत्तर में हरिद्वार तक फैल गया है। मेरा अनशन जो कि अभी तक स्थगित है, अब केवल गुरूवयूर पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि स्वत: ही सभी मंदिरों तक अपने आप फैलता जा रहा है।’’

इस बात को कोई भी समझ सकता है कि विधेयक की विधायी प्रकिया में कैसा तमाशा हुआ। 24 मार्च 1933 को श्री रंगा अय्यर ने सभा में विधिवत विधेयक पेश किया, क्योंकि वह विधेयक श्री गांधी की चाहत थी, असेम्बली के कांग्रेसी सदस्य विधेयक को समर्थन देने के लिए तैयार थे। श्री गांधी ने श्री राजगोपालाचारी और घनश्याम दास बिडला को विधेयक आसानी से पास कराने के विचार से गैर-कांग्रेसियों से समर्थन जुटाने के लिए नियुक्त किया। श्री गांधी ने कहा कि वे उनकी अपेक्षा अच्छे प्रचारक हैं। कोलेगोड के राजा ने विधेयक को पुनर्स्थापित करने के प्रस्ताव का विरोध किया तथा श्री थप्पन ने कहा कि विधेयक विधानमंडल के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। प्रेसीडेंट ने श्री थप्पन की आपत्ति को अस्वीकार कर दिया और विधेयक पुनर्स्थापित किये जाने की अनुमति दे दी। श्री रंगा अय्यर ने फिर एक प्रस्ताव रखा कि मंदिर प्रवेश विधेयक को 30 जुलाई तक उस पर जनमत जानने के लिए परिचालित किया जाए। राजा बहादुर कृष्णमाचारी ने परिचालन में प्रस्ताव का विरोध किया और प्रस्तावित विधेयक का भी तीव्र विरोध किया। अंत में उन्होंने जोर देकर कहा कि परिचालन की तिथि 31 जुलाई के स्थान पर 31 दिसंबर निश्चित की जाए। श्री गुंजाल ने पुनर्स्थापित किए जाने की बात का विरोध करते हुए सदन से कहा कि विधेयक का समर्थन न करें। शाम के पांच बज चुके थे और अधिवेशन का वह अंतिम दिन था। प्रेसीडेंट सदन को दूर तक बैठने पर विचार जानना चाहते थे। चूंकि इसके लिए विशाल बहुमत नहीं था, उन्होंने सदन की बैठक स्थगित कर दी। इस प्रकार विधेयक असेम्बली के शरदकालीन सत्र तक स्थगित हो गया।

विधेयक पर केंद्रीय विधानमंडल के शरदकालीन सत्र में 24 अगस्त 1933 को फिर बहस शुरू हुई। सरकार की ओर से सर हैरी हेग ने स्पष्ट किया कि विधेयक को परिचालित करने के प्रस्ताव के हमारे समर्थन का अर्थ यह कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि

सरकार उसके उपलंबधों का भी समर्थन करती है। यह तो सही है कि सरकार की दलितों के प्रति सहानुभूति है और उनके सामाजिक आर्थिक विकास के लिए चिंतित है। उन्होंने पिछली जनवरी को जो सरकारी विज्ञप्ति घोषित की थी उसका उल्लेख किया। उस विज्ञप्ति में सरकार का विचार पूरी तौर से स्पष्ट किया गया था। जहां तक मंदिर जाने वाले हिंदुओं के लिए परिचालन की शर्त का प्रश्न था, श्री हेग ने कहा कि यह शर्त पूरी करना व्यावहारिक रूप से उपयुक्त नहीं होगा। सरकार चाहती थी कि हिंदू समाज के सभी वर्गों द्वारा उस विषय पर बहस हो, इसलिए श्री शर्मा के संशोधन को वे पूर्ण समर्थन देते हैं। जून 1934 तक परिचालित करने के लिए श्री शर्मा का संशोधन स्वीकार कर लिया गया। बाकायदा तुरंत राय ली गई, जो हजारों फुलस्केप कागजों पर दर्ज थी। दूसरे चरण के लिए विधेयक तैयार कर दिया गया कि उस पर विचार करने के लिए एक प्रवर समिति गठित की जाए। श्री रंगा अय्यर ने भी इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना दी। तभी एक अनोखी घटना घटी। भारत सरकार ने असेम्बली भंग करने का फैसला किया और नए चुनाव का आदेश दे दिया। इस घोषणा का परिणाम यह हुआ कि श्री रंगा के विधेयक के संबंध में केंद्रीय विधानमंडल में कांग्रेस सदस्यों का रूख अचानक बदल गया। सभी सदस्य उस विधेयक के विरोधी हो गए और भविष्य में किसी प्रकार का समर्थन देना अस्वीकार कर दिया। उन्हें चुनावों का भय सताने लगा। श्री रंगा अय्यर की स्थिति बड़ी दयनीय थी। उन्होंने इसका बड़ी तीखी भाषा में विरोध किया, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है। श्री रंगा ने अपना प्रस्ताव पेश करते हुए कहा–

''महोदय, मैं मंदिर प्रवेश विधेयक पेश करता हूं, ताकि तथाकथित दलित वर्गों पर लगे प्रतिबंध हट सकें। श्रीमान् मैं प्रस्ताव करता हूं।''

''हिंदू मंदिरों में प्रवेश के संबंध में तथाकथित दलित वर्गों पर लगे प्रतिबंध दूर करने वाले विधेयक को एक प्रवर समिति को सौंपा जाये जिसमें माननीय सर नृपेन्द्र सरकार माननीय सर हेनरी क्रैक, भाई परमानंद, राय बहादुर एम.सी. राजा, श्री टी.एम. रामकृष्ण रेड्डी, राय बहादुर बी.एल. पाटिल और प्रस्तावक सदस्य के रूप में हों।''

''मैं आपकी अनुमति से शब्द 'इस निर्देश के साथ कि वह एक पखवाड़े में अपना प्रतिवेदन दें' निकाल देता हूं और प्रस्ताव के शेष नये भाग को यथावत रखूंगा।''

और समिति की बैठक गठित करने के लिए आवश्यक सदन की न्यूनतम संख्या पांच होगी।

''महोदय इस प्रस्ताव की सूचना देते समय मैं यह नहीं सोच सकता था कि हम एक पखवाड़ा पहले ही अधर में लटक जायेंगे। इसलिए मैं विधेयक की सीमाएं समझ सकता हूं। हमें प्रवर समिति तक पहुंचने का समय नहीं मिलेगा। मैं यह भी समझता हूं कि इस विषय में हमारे पास अभी अपनी राय व्यक्त करने का अवसर है।''

''मैंने पहले ही कहा है कि मैंने श्री सत्यमूर्ति से सेना मांग ली है, क्योंकि मुदालियार इतनी तेजी से भाषण दे रहे थे और मेरी बात कह रहे थे, इसलिए मैं अपनी बात स्पष्ट करने की स्थिति में उस समय नहीं था। यदि मैं ऐसा करता, तो श्री मुदालियार के भाषण में रूकावट डालता जो कि गलत होता। मैं जानता हूं कि श्री सत्यमूर्ति ने, जो मंदिर प्रवेश विधेयक के पक्ष में कभी नहीं रहे, कांग्रेस को उस विधेयक से हाथ खींच लेने के लिए तैयार कर लेने में सफलता प्राप्त कर ली है। मैं मद्रास के पत्र 'हिन्दू' में 16 अगस्त को श्री राजगोपालाचारी का जो बयान प्रकाशित हुआ था, पढ़ रहा हूं 'हिंदू' मद्रास का बहुत उत्तरदायी अखबार है, क्योंकि यह तार द्वारा दिया गया साक्षात्कार नहीं था,

महोदय, यदि मेरे समाज के एक तिहाई भाग को धर्म के साथ पर बहिष्कृत हुआ पड़ा रहना है, तो मैं समझता हूं कि ऐसे समाज को जीवित रहने का ही अधिकार नहीं है।

बल्कि लिखित बयान है, मुझे विश्वास है कि श्री राजगोपालाचारी का बयान बहुत सच माना जाएगा। श्री राजगोपालाचारी अस्पृश्यों के साथ विश्वासघात करने के कारण जनता से माफी मांग रहे हैं।'' श्री गांधी के प्रमुख सिपहसालार होने के नाते उनका विश्वासघात रिकार्ड में अवश्य आ जाना चाहिए। उनका कहना है–

''कुछ सनातनी हिंदुओं द्वारा प्रश्न उठाया गया है कि क्या कांग्रेस प्रत्याशी यह वचन देंगे कि कांग्रेस किसी भी ऐसे वैधानिक प्रस्ताव का समर्थन नहीं करेगी, जो धार्मिक कृत्यों के आड़े आयेगा। इसी प्रकार के प्रश्न अन्य विषयों पर भी पूछे जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रश्न केवल कांग्रेस प्रत्याशियों से पूछे जाते हैं। अन्य दलों के प्रत्याशियों और अन्य निर्दलीय प्रत्याशियों से इस प्रकार का स्पष्टीकरण नहीं मांगा जाता। यह कांग्रेस के लिए बड़ी प्रशंसा की बात है।''

''यह श्रीमान राजगोपालाचारी का बयान है। उस साधारण से विषय पर जनता की प्रशंसा के अनुरूप कार्य करने के बजाय लोकमत उभारने के लिए एक महान कांग्रेसी नेता अपने दामाद देवदास गांधी के साथ हमारे घर धरने पर बैठ गए। उन्होंने बार-बार मुझे दिल्ली बुलाया और कहा कि हम इस वैधानिक प्रस्ताव पर संयुक्त समर्थन की तलाश में हैं। अब शेक्सपियर की भाषा में केवड़े की तरह वही आदमी थूक कर राजनीतिक दलों की विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रश्नों को लेकर भिन्न-भिन्न नीतियां हैं।

किसी एक समय में उन सभी को चुनावी मुद्दा नहीं बनाया जा सकता।''

''मान्यवर, यह कांग्रेसी नेता जनता की भावनाओं का सामना करने से डरता है, जो उसी की भड़काई हुई होती है। क्या कांग्रेस के लोग गुलाम हैं?

जे दलित और कमजोर लोगों के लिए कुछ कहने से डरते हैं, वे गुलाम हैं।''

'मिल्टन के अनुसार कहना और सीधे कह कर मुकर जाना सिद्ध करता है, वह झूठा ही नहीं बल्कि इससे भी बढ़कर कायर है।' श्री राजगोपालाचारी आम चुनाव से पहले प्रत्येक मंच से, जो भी कहा करते थे, अब उससे मुकरते हैं। वह कहा करते थे–

''इस चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशी सुस्पष्ट सामाजिक मुद्दे लेकर चुनाव में गए हैं।''

''यह कहने का अर्थ है कि वे जनता को, उनके पूर्वाग्रहों को बढ़ावा देने के लिए गए हैं। जिन्हें उन्होंने गुमराह किया था परन्तु अब वे स्वयं दलदल में फंस गए हैं। लार्ड विलिंगटन ने असेम्बली भंग कर उन्हें दलदल से बचा लिया और संवैधानिक वायसराय होने के नाते संवैधानिकता के मार्ग पर लाकर सुरक्षित कर दिया। इसलिए वे अपने दोषों से बच गए और अब विधानमंडल में अधिक से अधिक संख्या में आने की चालें चल रहे हैं। यदि वे मंदिर प्रवेश विधेयक अथवा अस्पृश्यकता के प्रश्न को लेकर चले होते तो, उन्हें शायद बहुत से मतों से हाथ धोना पड़ता, क्योंकि उनका मुख्य मुद्दा वह नहीं था। श्री गांधी द्वारा सार्वजनिक रूप से मेरा विरोध किए जाने के बावजूद मैंने यह कहा था। मैंने उस समय भी यही कहा था जब शंकराचार्य मालाबार में स्थित पालघाट में मेरे भाई के घर पर ठहरे हुए थे। मेरा भाई विधेयक का विरोध करने के लिए प्रतिनिधि मंडल बना कर वायसराय के पास आया। मैंने कहा मैं जानता हूं कि मालावार में सुधारक बहुमत में नहीं है।'' सुधारक कहीं पर भी बहुमत में नहीं है, परंतु वे बहुमत को अपने पक्ष में रख कर विश्वास रखते हैं। तब कहा कि मालावार में गुरूवयूर मंदिर के संबंध में कांग्रेसियों ने जनमतसंग्रह कराया उसका कोई भी परिणाम हो सकता है। मैं बिल्कुल विश्वास नहीं करता कि मालावार में मंदिर में जाने वालों का बहुत मंदिरों में अस्पृश्यों के प्रवेश के पक्ष में था। परंतु मैं उनके पक्ष लड़ने के लिए तैयार था, उसके पक्ष में तर्क-वितर्क करने के लिए तैयार था। उन्हें मनाने और उन्हीं के हित में उन्हें तैयार करने के पक्ष में था, क्योंकि मैं समझता हूं कि अस्पृश्य मेरे ही समाज का एक है। महोदय, यदि मेरे समाज के एक तिहाई भाग को धर्म के साथ पर बहिष्कृत हुआ पड़ा रहना है, तो मैं समझता हूं कि ऐसे समाज को जीवित रहने का ही अधिकार नहीं है। यह इस विचार से ही हिन्दू जाति संगठित हो, इस विचार से भी कि भविष्य में हिन्दू जाति का उत्थान हो, जैसा कि उसका अतीत रहा है, जब वैदिक काल में अस्पृश्यता नाम की कोई चीज नहीं थी, मैं उनके हक के लिए लड़ रहा हूं। अब मैं समझता हूं कि जो कांग्रेसी कल अस्पृश्यता के संदर्भ में जितने उत्सुक थे, आज उतने ही उदासीन हैं। श्री राजगोपालाचारी ने

किस प्रकार मंदिर प्रवेश विधेयक की अर्थी पर रस्सी लपेट दी जैसा कि राज बहादुर कृष्णमचारी, कोलेगोंड के राजा साहेब और राव सत्य चरण मुखर्जी, जो देश में सनातनी हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं भी सम्भवत: यह कहना पसंद करेंगे।

''महोदय! श्री राजगोपाचारी कहते फिरते हैं कि अब और कोई मुद्दा नहीं है। इसका अर्थ यही है कि मंदिर प्रवेश का मुद्दा नहीं वरन् राजनीतिक, अंग्रेज भय की बात, ब्रिटिश विरोधी बात, उनका मुद्दा है, क्योंकि उन्होंने जन भावनाओं को भुना कर उसे जातीय जामा पहना दिया है। वे अहिंसा और धर्म की दुहाई देते हैं, क्योंकि अहिंसा पर धार्मिक रंग दे दिया जाता है। देश में अविश्वास का वातारण फैला दिया गया है। वे सोचते हैं कि अस्पृश्यकता विरोध के नाम व्यापक मुद्दा उठाने पर शायद परिस्थितियां सहायक नहीं हो सकती। उन्होंने मुद्दे बदल डाले। वे अपने वचन से फिर गए। वे गुलाम हैं जो दो तीन आदमियों के साथ सच्चाई पर चलने से डरते हैं।''

''तब श्री गांधी के प्रमुख सिपहसालार राजगोपालाचारी ने आगे और कहा यदि चुनाव में सफलता मिल जाती है, तो वे इस बात में विश्वास नहीं करेंगे कि किसी अन्य प्रश्न पर जनता की राय मालूम की जाए।''

''इसका मतलब यह हुआ कि वे मंदिर प्रवेश विधेयक के संबंध में जनता की राय नहीं जानना चाहते। वह महाशय जो हमारे दरवाजों पर गिड़गिड़ा कर कांग्रेस के लिए समर्थन मांगते थे, जिन्होंने मंदिर प्रवेश समर्थन की भीख मांगी थी कि वह मंदिर प्रवेश चाहते हैं, वे आज अस्पृश्यों के हितों के विरूद्ध विश्वासघात नहीं कर रहे हैं, वरन् स्वयं श्री गांधी के सिद्धांतों के साथ भी विश्वासघात कर रहे हैं क्योंकि हमें मालूम है कि कम्युनल एवार्ड में अस्पृश्यों के उत्थान की जो सुविधाएं दी गई थी, उन्हीं के कारण श्री गांधी ने अनशन किया था जिसको कांग्रेस ने संशय के साथ अस्वीकार किया था और इसीलिए हम जानते हैं कि अस्पृश्यता का प्रश्न जिसे हल करना है, जिसके लिए महान श्री गांधी सारे देश का भ्रमण करना चाहते थे, आज कांग्रेसी उनके साथ ही विश्वासघात कर रहे हैं। पहले भी इन्होंने काउंसिलों का बाईकाट करने के प्रश्न पर विश्वासघात किया था। वे काउंसिलों में फिर आए और आगे चल कर उन्हीं के संबंधी श्री राजगोपालाचारी की सहायता से उनके साथ विश्वासघात किया और वही आज कह रहे हैं कि वे जनता का आदेश है कि अस्पृश्यता के प्रश्न और मंदिर प्रवेश विधेयक पर कुछ नहीं करेंगे।''

''महोदय! मैं पूछता हूं कि राजा बहादुर कृष्णमाचारी और श्रीमान राजगोपालाचारी के बीच कहा अंतर है? राजा बहादुर कृष्णमाचारी सदैव मानते थे कि पहले जनता से आदेश लो, तब आओ और कानून बनाओ। महोदय! व्ह बुजदिल नहीं है। वह अपने आप में बहुत बड़ा सनातनी हिंदू है। वह सभी परिस्थितियों का सामना करने को तैयार है। ठीक इसके विपरीत ये लोग, जो सनातनी हिंदुओं को ऊपर से नीचे तक, सारे देश में जकड़कर सूली पर लटका देना चाहते हैं, भूल जाते हैं कि सनातन धर्म स्वयं अपने में पूर्ण सत्य है और वे जैसा व्यवहार करते हैं, सनातनी हिंदू भी उसे ठीक नहीं करेगा, क्योंकि सनातन धर्म सनातन सत्य है और सत्य के साथ विश्वासघात करना केवल झूठों का ही काम है। ये बहुत से सिद्वांत जिनसे हम अपने राष्ट्रीय लक्ष्य पर पहुंच सकते हैं, उनके साथ विश्वास करके अस्पृश्यों का मामला लेकर अपनी खाल बचाने के लिए हाथ झाड़ कर खड़े हो सकते हैं। श्री गांधी को अपवाद मानकर जैसा कि हम इस समय देख रहे हैं कि क्षेत्र के सभी बड़े कांग्रेसी नेताओं ने

जब अस्पृश्य राजनीतिक अधिकारों की मांग पेश करते हैं तब श्री गांधी अपनी स्थिति बदल देते हैं और मंदिर प्रवेश के समर्थक बन जाते हैं। हिंदू जब चुनावों में कांग्रेस को हराने की धमकी देते हैं, तब राजनीतिक शक्ति को कांग्रेस के हाथों में सुरक्षित रखने के लिए मंदिर-प्रवेश समर्थन को माचिस दिखा देते हैं।

आगामी चुनाव के प्रमुख संयोजक श्री राजगोपालाचारी के माध्यम से कहा है कि समस्त कांग्रेस के लोगों को हमें इस बात की छूट है कि इसे अधिकाधिक कांग्रेसी विधेयक बनाने से पहले उस पर अच्छी तरह सोच विचार कर लें।''

''मुझे आशा है कि सभी संविधानवेत्ता चाहे हिंदू हो अथवा मुसलमान, अस्पृश्यों के हितों की रक्षा करने के लिए एकजुट हो जायेंगे। उनमें बाद में सांप्रदायिक मुद्दों पर मतभेद हो सकते हैं, परंतु वे संगठित होंगे और कांग्रेस की नौटंकियों से लड़ने में सहयोग कर उन्हें पराजित करेंगे। महोदय! मैं समझता हूं कि अस्पृश्यों और दलितों के हितों के साथ यह विश्वासघात है। मैं इस आंदोलन में विश्वास नहीं रखता, यदि श्री गांधी पहले ही इस समस्या को अपने हाथ में ले लेते अथवा श्री राजगोपालाचारी दिल्ली में हर दरवाजे पर दस्तक न देते तो मैं इस प्रकार का विधेयक न लाता।''

यह गरिमा से पीछे हटने की बात थी और वह भी कितनी निंदनीय। इस पर श्री गांधी की क्या प्रतिक्रिया थी? 4 नवंबर 1932 को एक बयान में श्री गांधी ने कहा- ''गांवों में अस्पृश्यों को अनुभव करना चाहिए कि उनकी बेड़ियां टूट चुकी हैं, वे दूसरे ग्रामवासियों से किसी तरह हीन नहीं हैं। वे उसी ईश्वर के पुजारी हैं, जिसके अन्य ग्रामवासी हैं और उन सभी अधिकारों और सुविधाओं के हकदार हैं, जो अन्य सभी ग्रामवासियों को प्राप्त हैं। परंतु यदि सवर्ण हिंदुओं द्वारा समझौते की मूलभूत शर्तों का पालन नहीं किया जाता, तो मैं भगवान को और समाज को क्या मुंह दिखाऊंगा। मैं दलित वर्ग से संबंधित मित्रों डा. अम्बेडकर और राव बहादुर एम.सी. राजा से कहता हूं कि वे सवर्ण हिंदुओं को रास्ते पर लाने तक मुझे अपना बंधक समझें। यदि इसके लिए अनशन भी करना पड़ता है, तो सुधारों के विरोधी इसे बलपूर्वक नहीं रोक सकेंगे। जो मेरे मित्र हैं, और जिन्होंने मेरे साथ अस्पृश्यता निवारण का संकल्प लिया है, वे इस कार्य को करेंगे। यदि वे अपने संकल्प से पीछे हटते हैं अथवा यदि उन शर्तों से आंख चुराते हैं या साथ मिल कर नहीं चलते हैं और कहते हैं कि हिन्दुत्व केवल पाखंड है, तो मेरा जीवन निरर्थक है।''

श्री गांधी इसे दुहराते कभी नहीं थकते थे। हिंदू मंदिरों से अस्पृश्यों के बहिष्कार को उन्होंने अपनी आत्मा की पीड़ा को संज्ञा दी। इसके संबंध में श्री गांधी ने क्या किया? उस योजना पर राजगोपालाचारी के विश्वासघात के बाद जिसके संबंध में उन्होंने कहा था कि उसके बगैर उन्हें जीवन में कोई रूचि नहीं रह गई है, क्या श्री गांधी ने प्रतिकार किया? क्या इसका यह अर्थ नहीं कि केवल चुनाव जीतने के लिए कांग्रेस ने जो विश्वासघात किया था, इसी कारण श्री गांधी ने उस कुकृत्य की भर्त्सना नहीं की। बल्कि इसके विपरीत उन्होंने श्री राजगोपालाचारी को दोषी ठहराने के बजाए श्री राव अय्यर को इसलिए दोषी ठहराया कि उन्होंने विधेयक पर कांग्रेस कांग्रेसी समर्थन की वापसी पर आक्रोश में आकर भर्त्सना की थी। हरिजन के 31 अगस्त 1934 के अंक में उन्होंने लिखा-

''अभागे मंदिर प्रवेश विधेयक को, जैसा इसके प्रस्तावक ने किया वैसे नहीं बल्कि अधिक शिष्ट ढंग से दफनाया जाना चाहिए था। इस विधेयक को सुधारवादियों का संरक्षण नहीं मिला था। इसलिए विधेयक पेश करने वाले को चाहिए था कि वह समाज-सुधारकों से विधेयक के संबंध में राय लेता और उनके निर्देशानुसार कार्य करता। जहां तक मुझे मालूम है, विधेयक प्रस्तावक के लिए क्रोध करने की गुंजाइश नहीं थी, जिसके कारण उसने कांग्रेसियों को विश्वासघाती बताते हुए अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। वह विधेयक सीधे-सीधे धार्मिक व्यवहार के उद्देश्य से लाया गया था और बंबई में 25 सितंबर 1932 को पंडित मदनमोहन मानवीय की अध्यक्षता में हिंदू प्रतिनिधियों की सभा में की गई घोषणा पर आधारित था। इच्छुक पाठक घोषणा के विषय में तत्कालीन पत्र 'हरिजन' के मुख्य पृष्ठ पर छपे प्रत्येक सप्ताह के लिखे में पढ़ सकते हैं। इसलिए प्रत्येक हिंदू चाहे वह सवर्ण हो अथवा हरिजन इस विषय में रूचि लेता था। यह वह विषय नहीं था, जिसमें दूसरे हिंदुओं की अपेक्षा कांग्रेसी हिंदू ही अधिक रूचि लेते रहे हो। इसलिए वादविवाद में कांग्रेस का ही नाम घसीटना दुर्भाग्यपूर्ण था। विधेयक को सौम्य ढंग से संचालित करना चाहिए था।''

मंदिर-प्रवेश विधेयक के बारे में कहा जा सकता है कि वह राजनैतिक कलाबाजी थी। श्री गांधी का मंदिर-प्रवेश विधेयक पर फिसलना शुरू हो गया था। जब अस्पृश्य राजनीतिक अधिकारों की मांग पेश करते हैं तब श्री गांधी अपनी स्थिति बदल देते हैं और मंदिर प्रवेश के समर्थक बन जाते हैं। हिंदू जब चुनावों में कांग्रेस को हराने की धमकी देते हैं, तब राजनीतिक शक्ति को कांग्रेस के हाथों में सुरक्षित रखने के लिए मंदिर-प्रवेश समर्थन को माचिस दिखा देते हैं। क्या यही ईमानदारी है? क्या यह कोई संकल्प है? क्या यह कोई आरंभिक संताप नहीं था, जिसको श्री गांधी ने घुमाफिरा कर कहा।

(क्रमशः शेष अगले अंक में जारी)

निर्माणाधीन डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय स्मारक 26, अलीपुर रोड़, दिल्ली

एडवर्टोरियल

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयंती के उपलक्ष्य में किए गए कार्यक्रम

यह वर्ष डॉ. अम्बेडकर के 125वीं जयंती का वर्ष है जिसे सोल्लासपूर्वक मनाने के लिए भारत सरकार ने माननीय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय समिति गठित की है। डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयंती के उपलक्ष्य में पूरे वर्ष कार्यक्रम आयोजित करने का उद्देश्य, ऐसी भावना पैदा करना है ताकि समाज में समरसता स्थापित हो सके। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के संदेशों को देश के कोने-कोने तक पहुँचाने के लिए भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों द्वारा कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं।

1. डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयंती वर्ष में अक्टूबर एवं नवम्बर में 100 छात्रों को कोलम्बिया यूनिर्वसिटी एवं लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स अध्ययन यात्रा पर भेजा जा रहा है।

2. डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयंती वर्ष में सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के तहत जनपथ पर 3.25 एकड़ भूमि पर डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान परिसर में निर्माण कार्य प्रारम्भ हो चुका है। 20 अप्रैल 2015 को माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र का शिलान्यास एक भव्य समारोह में किया था।

3. 26 अलीपुर रोड़ नई दिल्ली स्थित डॉ. अम्बेडकर परिनिर्वाण भूमि को डॉ. अम्बेडकर स्मारक के रूप में विकसित करने की योजना को अंतिम रूप दिया जा चुका है। अक्टूबर या नवम्बर में निर्माण कार्य शुरू हो जाएगा।

4. 125वीं जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में नागपुर स्थित दीक्षा भूमि, बड़ौदा स्थित संकल्प भूमि को भी विकसित किया जा रहा है।

5. महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले स्थित डॉ. अम्बेडकर का पैतृक गांव 'अम्बावडे' को आदर्श गांव के रूप में विकसित किया जा रहा है।

बिन्दु (1) : डॉ. भीमराव अम्बेडकर की 125वीं जयंती के अवसर पर स्मारक सिक्के और डाक टिकट जारी करने का संक्षिप्त विवरण

1. मंत्रीमंडल ने निर्णय लिया था कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर की 125वीं जयंती वर्ष के रूप में देश भर में समारोह आयोजित किए जाएं। डा. भीमराव अम्बेडकर की 125वीं जयंती मनाने के लिए जिन मदों की पहचान की गई थी उनमें से एक ''स्मारक सिक्के'' जारी करना था।

2. आर्थिक मामले विभाग, वित्त मंत्रालय ने डॉ. अम्बेडकर फाउंडेशन के अनुरोध पर डॉ. भीमराव अम्बेडकर की 125वीं जयंती के सूचक चिन्हों के लिए 125 रु. के गैर-परिचालनीय और 10 रु. के परिचालनीय सिक्कों के दो पेपर डिजाईन (डिजाईन सेख्या 3 और 4, दिनांक 12.08.2015) प्रस्तुत किए थे। एचएमएसजेई एवं अध्यक्ष, डीएएफ द्वारा विधिवत स्वीकृत डिजाईन वित्त मंत्रालय को प्रस्तुत किए गए, जिन्होंने 125 रु. के स्मारक सिक्के और 10 रु. के एक परिचालन सिक्के को जारी करने के लिए भारत के माननीय प्रधानमंत्री जी से उनकी सुविधानुसार समय देने का अनुरोध किया था।

3. माननीय प्रधानमंत्री जी ने 7 रेस कोर्स रोड पर 6 दिसंबर, 2015 को 125 रु. और 10 रु. के स्मारक सिक्के जारी किए।

4. मंत्रीमंडल ने निर्णय लिया था कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर की 125वीं जयंती वर्ष के रूप में देश भर में समारोह आयोजित किए जाएं। 125वें जयंती वर्ष मनाने के लिए चिन्हित की गई मदों में से एक मद डा. भीमराव अम्बेडकर का स्मारक डाक टिकट जारी करना था।

5. पीआईबी सम्मेलन कक्ष, शास्त्री भवन में दिनांक 30.09.2015 को एक कार्यक्रम में माननीय संचार मंत्री के साथ एचएमएसजेई, अध्यक्ष, डीएएफ द्वारा स्मारक डाक टिकट जारी किया गया था।

बिन्दु (2) : मान्यता प्राप्त स्कूलों/कॉलेजों/विश्वविद्यालयों/संस्थानों के छात्रों के लिए डॉ. अम्बेडकर फाउंडेशन राष्ट्रीय निबंध प्रतियोगिता स्कीम के अंतर्गत निबंध प्रतियोगिता-2015 का संक्षिप्त विवरण

1. मंत्रीमंडल ने निर्णय लिया था कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर की 125वीं जयंती वर्ष के रूप में देश भर में समारोह आयोजित किए जाएं। चिन्हित किए गए अनेक कार्यक्रमों में से एक निबंध प्रतियोगिता-2015 का आयोजन करना था।

2. निबंध प्रतियोगिता-2015 अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय(एएमयू), अलीगढ़ के साथ सहयोग में आयोजित की गई। समाचार पत्रों में विज्ञापन और डॉ. अम्बेडकर फाउंडेशन की वेबसाईट के माध्यम से अखिल भारतीय आधार पर इसका प्रचार किया गया था।

3. एएमयू को कुल 2180 निम्न निबंध प्रविष्टियां प्राप्त हुई:-

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय द्वारा प्राप्त निबंध प्रविष्टियों की संख्या

श्रेणी : मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय/कॉलेज/संस्थान			श्रेणी: मान्यता प्राप्त स्कूल		
हिन्दी	अंग्रेजी	कुल	हिन्दी	अंग्रेजी	कुल
380	400	780	600	800	1400

4. एचएमएसजेई एवं अध्यक्ष, डीएएफ द्वारा विधिवत स्वीकृत निबंध प्रतियोगिता-2015 के परिणाम डा. अम्बेडकर फाउंडेशन की वेबसाईट पर अपलोड किए गए थे। परिणाम निम्न प्रकार हैं:-

2015 की निबन्ध प्रतियोगिता के परिणाम

श्रेणी : मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, संस्थान

	हिन्दी	अंग्रेजी
प्रथम पुरस्कार (रु. 1,00,000/-)	सुश्री नेहा रावत मोहल्लान ठाकुरान, दादरी (जी. बी. नगर) यू. पी.	श्री अनुज, मकान नं. 500/34, कृष्णा कॉलोनी, काठमंडी, झाझर रोड, रोहतक, हरियाणा-124001
द्वितीय पुरस्कार (रु. 50,000/-)	सुयास रायसिंघानी, पता - 46, माधव कृपा सर्वोदय कॉलोनी, पुलिस लाइन, अजमेर, राजस्थान-305001	प्रज्ञान दीप अग्रवाल द्वारा कृष्ण स्वरूप (एडवोकेट), मंड फेथ गंज, बुलंदशहर, यू.पी.-203001
तीसरा पुरस्कार (रु. 25,000/-)	श्री अतुल कुमार वर्मा, क्यू/1085, श्याम भवन, कन्नूगोयान, गल्लामंडी, बाराबंकी-225001, (यूपी)	सुश्री स्वाथि एस. पी., 92/ए, कृष्णांकुंज, यमुना नगर, ओसिवारा, अंधेरी (पश्चिम), मुंबई-500053

श्रेणी : मान्यता प्राप्त विद्यालय

	हिन्दी	अंग्रेजी
प्रथम पुरस्कार (रु. 25,000/-)	सुश्री अपूर्वा शर्मा पुत्री अनिल कुमार शर्मा डी-256, प्रेमनगर जोतवारा, जयपुर, राजस्थान - 302012	श्री विकास अग्रवाल, एफ-20, 21, 22, रामेश्वयर धाम मुरलीपुरा स्कीरम, जयपुर, राजस्थान
द्वितीय पुरस्कार (रु. 15,000/-)	कुमारी सुमति पुत्री स्वर. माया प्रकाश, ग्राम धियार महोलिया हरदोई, जिला हरदोई, उत्तर प्रदेश-241001	श्री शिवराज वी. रादर, मकान नं. 944, गौरी शंकर नगर, दूसरा मीन, तीसरा क्रॉस, रानेबेन्नूर, जिला हवेरी, कर्नाटक - 581115
तीसरा पुरस्कार (रु. 10,000/-)	श्री राजीव रंजन, ईडब्ल्यूएस-1035, रत्नाकर खंड, रायबरेली रोड, सधुसिटी, लखनऊ-226025 (यू.पी.)	श्री अपर्णा शर्मा पुत्री अनिल कुमार शर्मा डी-256, प्रेम नगर, जेटवाडा जयपुर राजस्थान - 302012

उपरोक्त निबन्ध प्रतियोगिता 2015 के विजेताओं को दिनांक 3.2.2016 को दोपहर 2.00 बजे डी ए एफ इंडिया हेबिटेड सेंटर लोधी रोड, नई दिल्ली में एचएमएसजेई के अध्यक्ष द्वारा पुरस्कार वितरित किये गए।

बिन्दु (3) : एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ोदरा में डॉ. अम्बेडकर अध्ययन केंद्र की स्थापना करना

एम.एस. विश्वविद्यालय में सामाजिक कार्य का संकाय सन् 1950 से कार्य कर रहा है। संकाय डॉक्टोरल लेवल, मास्टर लेवल और डिप्लोमा में पाठ्यक्रमों का संचालन करता है। इसने नियोजन, महिला, बाल, अनु. ज.जा./ज.जा. आदि के विकास के क्षेत्र में अपार योगदान दिया है। यह अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों के साथ सहयोगी विनिमय कार्यक्रम चला रहा है। केंद्र की स्थापना करने का प्रस्ताव डॉ. अम्बेडकर के नाम में नोडल और व्यावसायिक संस्थान के माध्यम से इन पहलों को गति प्रदान करना है। यह कार्य एक ऐसे शहर में उन्हें सच्ची श्रद्धांजली प्रदान करना होगा जहां उन्होंने समाज के सीमांत वर्ग के लोगों के लिए कार्य करने की शपथ ली थी। केंद्र के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं:-

क. समाज के सीमांत वर्ग के लोगों जैसे दलित, महिला, बच्चे, मुसलमान और अन्य कमजोर वर्गों के क्षेत्र में दीर्घ और लघु अनुसंधान परियोजनाओं का संचालन करना।

ख. समाज के सीमांत वर्ग के सशक्तीकरण के लिए साहित्य और प्रयोगजन्य आंकड़ा आधार तैयार करना और प्रकाशित करना।

ग. प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में गोष्ठी, कार्यशाला और लघु अवधि प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करना।

2. जिला कलेक्टर, वड़ोदरा ने 1.02 करोड़ की एक अनुमानित लागत पर एम.एस. विश्वविद्यालय, वड़ोदरा में डा. अम्बेडकर अध्ययन केंद्र की स्थापना करने के लिए एक प्रस्ताव अग्रसारित किया है। यह प्रस्ताव विचाराधीन है।

सम्पादक के नाम पत्र

नायकों के विचारों को विस्तार

सम्पादक महोदय,

मैं 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका का नियमित पाठक हूँ। पत्रिका के माध्यम से मैं अपने नायकों के कार्यों को जान पाता हूँ और उनके विचारों को ग्रहण करने की कोशिश करता हूँ। पत्रिका की साज-सज्जा भी काफी शानदार लगता है। सामाजिक न्याय के नायकों को विस्तार से बताने के लिए संपादक और डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान का बहुत बहुत धन्यवाद।

– **हरिभान कुमार**
दामोह, मध्य प्रदेश

बाबासाहेब के सपने को सच करें

सम्पादक महोदय,

बाबासाहेब का मिशन हम सारे लोगों के द्वारा आज भुला दिया गया है, क्योंकि हम सभी लोग आज आरामतलब जिंदगी को पसंद करने लगे हैं। सरकार में बैठे दलित कर्मियों से बाबासाहेब ने जो अपेक्षा की थी, वह कर्मचारी आज बाबासाहेब का नाम लेने से या जय भीम कहने से डरते हैं, वे समाज के लिए क्या करेंगे? सिर्फ दलित कर्मचारी ही नहीं, बल्कि जिन लोगों को बाबासाहेब के कार्यक्रमों को लागू करने की जिम्मेदारी दी गयी थी, उन्होंने भी बाबासाहेब के सपनों को तोड़ा है। बाबासाहेब के सपनों को पूरा करने के लिए हमें उनके कार्यक्रमों को लागू किये जाने के बारे में ठीक से जांच पड़ताल करने और इससे जुड़ी तमाम हकीकतों को सामने लाने की जरुरत है।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के अंतर्गत एक स्वायत्तशासी संस्था है, जिसके ऊपर दलितों से संबधित कार्यक्रमों को लागू करने की जिम्मेदारी दी गयी है। मंत्रालय और प्रतिष्ठान ने इन कार्यक्रमों को कैसे और किन-किन क्षेत्रों में लागू किया है, क्या-क्या योजनायें चल रही हैं। कृपया इसको पत्रिका में विस्तार से प्रकाशित करें ताकि सभी लोग इन योजनाओं का लाभ पा सकें।

– **रामलाल**
मेरठ, उत्तर प्रदेश

बहुजन इतिहास का निर्माण

सम्पादक महोदय,

मैं 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका का तहे दिल से शुक्रगुजार हूँ, जो सामाजिक न्याय के नायकों के विचारों को देश भर में फैला रहा है। सामाजिक सुधारक ज्योतिबा फुले, नारायण गुरु, छत्रपति शाहूजी महाराज, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की विरासत को आगे बढ़ाते हुए पत्रिका ने जाति, क्षेत्र और भाषिक दीवारों को तोड़ने का बेहतरीन प्रयास किया है। 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका बहुजनों का एक सामान्य इतिहास का निर्माण भी कर रहा है।

पत्रिका ने दलितों और अन्य वंचितों के बीच चेतना फैलाने के लिए शानदार प्रयास किया है। यह पत्रिका भारत के भविष्य की रूप-रेखा खींचेगी।

इसी कामना के साथ आभार!

– **महेश राठी**
राजनंदगांव, छत्तीसगढ़

सामाजिक संदेश के विषय में

सम्पादक महोदय,

आप प्रत्येक माह सामाजिक न्याय संदेश में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने का एक बड़ा कार्य कर रहें हैं। इस लोकतंत्र के प्रहरी को आज भारत के प्रत्येक नागरिक और विश्व के देशों तक बिना किसी भेदभाव के पहुंचाने का पुनीत कार्य करें।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर को एक महापुरूष के साथ एक विचारधारा के रूप में पेश कर आज के युवा वर्ग में चेतना का संचार करें। भारत के सच्चे राष्ट्रवादी डॉ. अम्बेडकर के विचारों तक आसानी से पहुंच बनाने हेतु नई तकनीकी माध्यम को ज्यादा से ज्यादा महत्त्व दें। मैं बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों को पढ़ अपने आपको गौरवान्वित महसूस कर रहा हूं।

– **लालसिंह भूमेवालकर**
कुम्हारपुरा बिजनौर (उ.प्र.)

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संगठन) की मासिक पत्रिका

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

संपादक : सुधीर हिलसायन
संपादकीय संपर्क : 011-23320588/सब्सक्रिप्शन संपर्क : 011-23357625

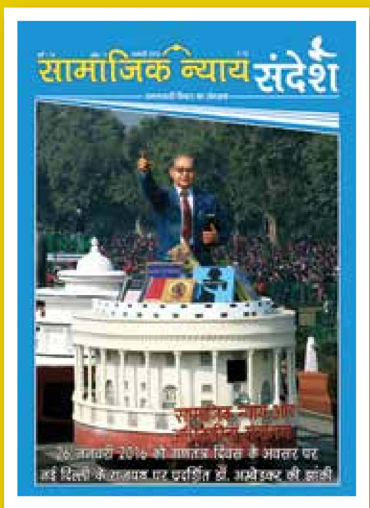

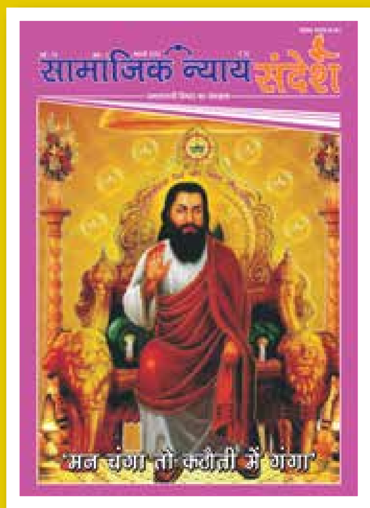

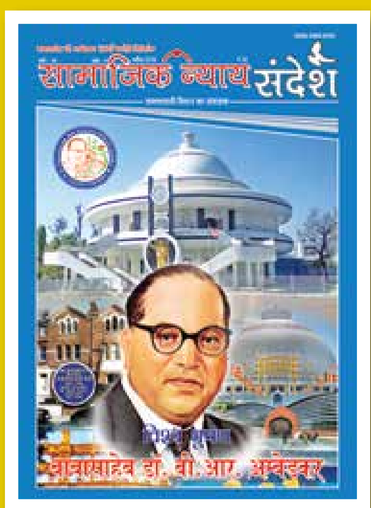

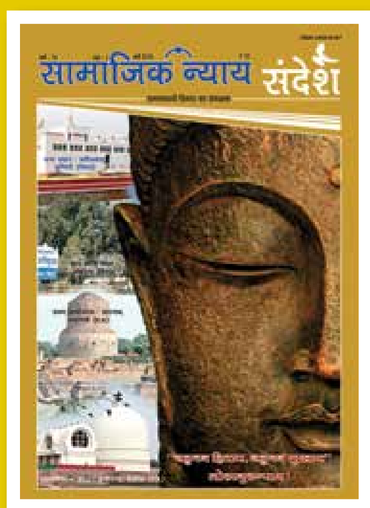

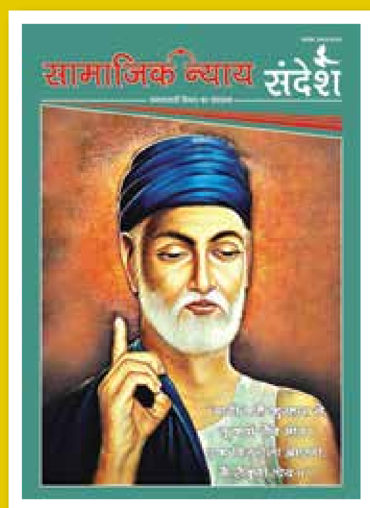

स्वयं पढ़ें एवं दूसरों को पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

पाठक सदस्य बनें

कार्यालय : 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001, फोन नं. 011-23320588, 23320589, 23357625
फैक्स : 011-23320582, ई.मेल : hilsayans@gmail.com, वेबसाईट: www.ambedkarfoundation.nic.in
(पत्रिका उपर्युक्त वेबसाईट पर पढ़ी/देखी जा सकती है)

सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका *'सामाजिक न्याय संदेश'* का प्रकाशन पुनः आरम्भ हो गया है। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित, सशक्त एवं समृद्ध समाज और राष्ट्र की संकल्पना को साकार करने के संदेश को आम नागरिकों तक पहुंचाने में 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'सामाजिक न्याय संदेश' देश के नागरिकों में मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जगाने के लिए समर्पित है।

'सामाजिक न्याय संदेश' से बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों व उनके दर्शन को जानने/समझने में मदद मिलेगी ही तथा फाउन्डेशन के कल्याणकारी कार्यक्रमों एवं योजनाओं की जानकारी भी प्राप्त होगी।

सामाजिक न्याय के कारवां को आगे बढ़ाने में इस पत्रिका से जुड़कर आप अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। आज ही पाठक सदस्य बनिए, अपने मित्रों परिवार-समाज के सदस्यों को भी सदस्य बनाईए, पाठक सदस्यता ग्रहण करने के लिए **एक वर्ष के लिए रू. 100/-, दो वर्ष के लिए रू. 180/-, तीन वर्ष के लिए रू. 250/-,** का डिमांड ड्राफ्ट, अथवा मनीऑर्डर जो **'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन'** के नाम देय हो, फाउन्डेशन के पते पर भेजें या फाउन्डेशन के कार्यालय में नकद जमा करें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे। पत्रिका को और बेहतर बनाने के लिए आपके अमूल्य सुझाव का भी हमेशा स्वागत रहेगा। पत्रिका को फाउन्डेशन की बेबसाइट www.ambedkarfoundation.nic.in पर भी देखी/पढ़ी जा सकती है।

– सम्पादक

सामाजिक न्याय संदेश सदस्यता कूपन

मैं, डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का ग्राहक बनना चाहता /चाहती हूं/

शुल्कः वार्षिक सदस्यता शुल्क रू. 100/-, **द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क रू.** 180/-, **त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क रू.** 250/-। (जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

मनीऑर्डर/ डिमांड ड्राफ्ट नम्बर...दिनांक.......................संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर 'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन' के नाम नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

....पिन कोड ....

फोन/मोबाईल नं.....................................ई.मेलः ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित निम्न पते पर भेजिए :

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन

15 जनपथ, नई दिल्ली-110 001 फोन न. 011-23320588, 23320589, 23357625

27 जून, 2016 को नई दिल्ली में डिनोटिफाइड ट्राइब्स पर एक पत्रक का लोकार्पण करते हुए केन्द्रीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री श्री थावरचन्द गेहलोत, डिनोटिफाइड ट्राइब्स कमीशन के अध्यक्ष श्री भिकुरामजी इदाते एवं अन्य।

20 जून, 2016 को नई दिल्ली में केन्द्रीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री श्री थावरचन्द गेहलोत केरल के विधि संस्कृति एवं पिछड़े वर्ग के मंत्री श्री एके बालन से नई दिल्ली में बैठक करते हुए इस अवसर पर उपस्थित हैं, सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग के पिछड़ा वर्ग प्रभाग के संयुक्त सचिव एवं डॉ. अ.प्र. के सदस्य सचिव श्री बी.एल. मीना।

RNI No. DELHIN/2000/9036

प्रकाशक व मुद्रक जी.के. द्विवेदी द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के लिए इण्डिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली-110064 से मुद्रित तथा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित।
सम्पादक : सुधीर हिलसायन